चित्त और एकाग्रता

जनवरी १९५१

[जनवरी १९५१]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

प्रबल वीर

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ॥

(ऋ. ७।५८।२)

हे (भीमासः) भयंकर (तुवि-मन्यवः) अत्यन्त उत्साही (अयासः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीरो ! (वः जनूः) तुम्हारा जन्म ही (त्वेष्येण) तेजस्वितासे युक्त है । (ये महोभिः) जो अपने सामर्थ्यसे तथा (ओजः प्रसन्ति) शक्तिसे प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं ऐसे (वः यामन्) तुम वीरोंके आक्रमणसे (विश्वः भयते) सभी शत्रु भयभीत होते हैं और वे (स्वर्दृक्) आकाशकी ओर दृष्टि लगाकर केवल देखते रहते हैं, घबरा जाते हैं ।

वीरोंको चाहिये कि वे उग्र दिखाई देनेवाले, अत्यन्त उत्साही, कभी भी हताश न होनेवाले, प्रभावशाली, सामर्थ्यसे युक्त एवं बलवान बनें । इनके आक्रमणसे शत्रु भयभीत हो जावें, घबरा जावें, आकाशकी ओर टकटकी लगानेके अतिरिक्त उन्हें कुछ भी न सूझे । वीर शत्रुओंपर आक्रमण करें तो इस प्रकारका भयंकर आक्रमण करें ।

मरुतोंका वर्णन करके वीरोंके लिये यह उपदेश दिया गया है ।

अंक १ — वैदिक धर्म — वर्ष ३२

क्रमांक २५, मार्गशीर्ष विक्रम संवत् २००७ जनवरी १९५१

योगी श्री अरविन्द घोष

योगी श्री अरविन्द घोष सोमवार ता० ३ दिसम्बरको अक्षय ब्राह्मी स्थितिमें विलीन हुए! विगत ४० वर्षोंसे पांडेचरीमें अपना आश्रम स्थापितकर उन्होंने अपनी अपूर्व राजयोग पद्धतिसे परिशुद्ध मानव निर्मितिका कार्य प्रारम्भ किया।

अन्य हठयोगियोंके समान थियेटरोंमें प्रदर्शन करके अज्ञ लोगोंको इन्होंने कभी धोखा नहीं दिया, अथवा योगसे जिनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ऐसे विचित्र प्रयोग-जैसे एसिड पीना, सांप निगल जाना आदि भी उन्होंने कभी प्रदर्शित नहीं किये। इस प्रकार उन्होंने स्वयंको योगिराज कहकर प्रसिद्ध नहीं किया। अपितु अन्तर्मनकी शक्ति अभिवृद्ध होकर उसमें विश्वात्माकी शक्ति प्रादुर्भूत होवे और इस प्रकारके राजयोगी द्वारा एक स्थानपर बैठकर इस अपनी आन्तरिक दिव्य शक्तिके योगसे राष्ट्र एवं विश्वकी जनताका उन्नतिके लिये सच्ची उन्नतिके कार्य इच्छामात्रसे संपन्न हो जावें; इस आधारपर इस प्रकारसे आत्मशक्तिकी प्रभावशाली प्रेरणासे इष्ट सुधार होता रहे और उसके द्वारा मानव समाजकी अखण्डित उन्नति होती रहे, यही उनके सम्पूर्ण अनुष्ठानका साध्य था।

जन्म १५-८-१८७२ मृत्यु ४-१२-१९५०

योगीराज अरविन्दके इस अनुष्ठानसे कौनसी बात सिद्ध हुई, यह साधारण मनुष्योंकी समझमें अभी आ सकना सम्भव नहीं, किन्तु उनकी विशेष प्रभावशालिनी वाङ्मयमूर्ति ग्रन्थ रूपसे आज भी विद्यमान है और वह भविष्यमें भी उसी प्रकार स्थायी रूपसे विद्यमान रहेगी। सच्चे योगी अरविन्द तो ये ग्रन्थ ही हैं। उनका यह वाङ्मय अमर है। उनका यह अमर सारस्वत प्रवाह मनुष्योंका निःसंशय कल्याण करेगा। उन्होंने इन ग्रन्थोंमें उच्च भूमिकावस्थित अनेक रहस्य उत्तम रीतिसे प्रकट किये हैं तथा मानवोंका साध्य क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त किया जाय इसका साधनमार्ग भी उन्होने निर्दर्शित किया है।

उनका यह अमर वाङ्मय भविष्यमें अपना प्रभाव दिखायेगा और इनके इस अनुष्ठान मार्ग से चलकर अनेक साधक सिद्ध होंगे। आज भारत एवं विदेशोंमें भी इनके साधन मार्गसे अनुष्ठान करनेवाले अनेक साधक हैं। यदि श्री अरविन्दके पार्थिव देहके हमें पुन दर्शन न हुए तो भी उनका वाङ्मयीन देह साधकोंका सदा मार्ग दर्शन करता ही रहेगा।

श्री अरविन्दके हजारों शिष्य हैं। पाण्डेचरीमें ही ८०० साधक हैं। श्री अरविन्दकी जीवित अवस्थामें भी शिष्योंको उनका प्रतिदिन उपदेश नहीं मिलता था। वर्षमें दो चार बार ही उनके दर्शन होते थे। उस समय भी वे कुछ बोलते न थे। मानसिक प्रेरणासे ही उनका कार्य चला करता था और अब तो उनका यह मन जीवितावस्थाकी अपेक्षा और भी अधिक प्रभावशाली बन गया है। तब श्री अरविन्दके शिष्योंको या औरोंको भी "अब आश्रम एवं साधकवर्ग अनाथ हो गया" ऐसी अनुभूति न होनी चाहिये।

जिनमें तीव्र इच्छा होगी उन्हें निःसंशय श्री अरविन्दकी स्फूर्ति मिलती रहेगी। यह स्फूर्ति साधकोंको प्राप्त होवे एवं आध्यात्मिक भूमिकापर मानव समाजकी अखण्ड प्रगति होवे, यह हमारी कामना वर्तमान संत्रस्त जगत्के लिये है।

भारतके लोहपुरुषका
स्वर्गारोहण

संपूर्ण भारत देश शोकसागरमें डूब गया है ! भारतीय स्वातंत्र्य समरका प्रमुख सेनानी चल बसा !! अपने अन्तिम श्वासतक जिसने भारत राष्ट्रके अभ्युदयके लिये ही प्रयत्न किया उसीका जीवन सच्चा राष्ट्रीय जीवन कहने योग्य है। वही जीवन राष्ट्रके तरुणोंके सामने आदर्श रूपसे रहने योग्य जीवन है।

भारत राष्ट्रको सुसंघटित और सामर्थ्यवान बनानेके लिये उन्होंने गत २१ वर्षोंमें जो जो सफल यत्न किये वे सबको विदित हैं। इस कारण उनका नाम भारतीय इतिहासमें स्थायी महत्व रखनेवाला हुआ है। मेरी उस महान राष्ट्रनेतासे मुलाकात होकर बीस दिन भी नहीं हुए, इस मुलाकातमें भारतीय सभ्यताकी सुरक्षाके लिये जो उन्होंने अपने विचार प्रकट किये वे इस समय सबके सामने आने योग्य हैं। उस मुलाकातके समय ये इतने शीघ्र चल बसेंगे ऐसा मुझे प्रतीत नहीं हुआ था। इस समयके उनके विचार जैसे उनके मुखारविंदसे प्रकट हुए वैसे ही यहां रखता हूं—

सरदारजीसे अन्तिम मुलाकात

गत ता. ३० नवंबरके दिन दोपहरके ११ बजे श्री० सन्माननीय श्री सरदार वल्लभभाईजी पटेल, गृहमंत्रीजीकी अन्तिम मुलाकात अमदाबादमें मेरे साथ हुई। समयपर मैं अपने दो मित्रोंके साथ उनके रहनेके स्थानपर पहुंचा उनके पास मेरे आनेकी खबर पहुंचाई। उन्होंने अकेले ही मुझे अन्दर बुलाया। मैं उनके कमरेमें गया। उस समय वे बिस्तरेपर शाल ओढे लेटे थे। मेरे वहां पहुंचते ही वे बडे प्रेमसे उठकर बैठे, हाथमें हाथ मिलाकर, मेरा स्वागत किया और साथ रखी कुर्सी पर मुझे बैठनेको कहा।

इस समय उनका मुख आनन्द प्रसन्न था तो भी कार्य भार उनपर अधिक होनेकी सूचक थकावट भी उसमें काफी दीखती थी। थकावटका पता वे अपने भाषणसे दिखाते नहीं थे, पर राष्ट्रकार्यका बोझ और भारत राष्ट्रके भविष्यके संबंधकी चिन्ता परिणाम किये बिना थोडी ही रह सकती है !!! लोहपुरुष भी सांप्रतकी परिस्थितिके कारण पिघल सकता है, यह तो उनके शरीरसे स्पष्ट दिखाई देता था।

प्राथमिक औपचारिक कुशल प्रश्न पूछनेका कार्य होनेपर सरदारश्रीने पूछा कि "स्वाध्याय मण्डलका कार्य कैसा चल रहा है ?"

यह सरदारजीका प्रश्न सुनकर मुझे आश्चर्य प्रतीत हुआ कि इतना कार्य भार होनेपर भी सरदारजीको स्वाध्याय-मंडलके कार्यकी भी चिंता लगी है। मैंने गत ३२ वर्षोंके कार्यका वृत्तांत कहना शुरू किया, मैंने ७।८ मिनिटोंमें ही समाप्त करना था। थके हुए अपने देशके बडे नेताको अधिक परिश्रम देना मुझे योग्य प्रतीत नहीं होता था। इसलिये वेद, गीता, उपनिषद आदिके प्रकाशनके कार्यके विषयमें मैं कह रहा था, ४।५ मिनिट ही मेरा भाषण हुआ होगा, इतनेमें हंसकर मेरी ओर मुख करके स्वयं सरदारजी ही कहने लगे—

"पंडितजी ! वह तो सब मुझे मालूम है, आपकी भगवद्गीताकी पुरुषार्थ बोधिनी टीकाकी तो हम जेलोंमें छः छः महिने कथा सुनते रहे। यह टीका तो जेलके यात्रियोंके लिये बडी प्रिय हुई थी। हम सबको वह बडा* उत्तम तथा गीताका आदेश व्यवहारमें लानेवालोंको बडी सहायक प्रतीत हुई। आपके अन्य ग्रन्थोंका भी अध्ययन हमने जेलोंमें खूब किया। आपके ही संस्कृत-पाठ-मालासे मैंने तथा श्री राजगोपालाचारीजीने संस्कृत भाषाका अध्ययन किया है। ये पुस्तक संस्कृत सीखनेके लिये अच्छे हैं।"

"आपके वेद और उपनिषद भाष्य महात्मा गांधीजीको बडे प्रिय थे और उन्होंने कई विद्वानोंको, जैसे स्वर्गीय प्रि.

ध्रुव जैसोंको, उनकी बड़ी सिफारिस की थी। वे चाहते थे कि अपने प्राचीन ग्रंथोंपर ऐसे ही सुबोध तथा सरल भाष्य होने चाहिये।"

"मैं भी चाहता हूं और मैं तो भारतीय सभ्यताका उपासक हूंही, इसलिये मैं तो दिलसे चाहता हूं कि वेद उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता आदिके ग्रंथ सुबोध और सरल रीतिसे मुद्रित होकर जनताके सामने आने चाहिये। आपका ग्रंथ प्रकाशन जैसा महात्माजी चाहते थे, वैसा हम भी चाहते हैं। मैं तो चाहता हूं कि आप इस कार्यको शीघ्र तैयार करें।"

"इसमें आर्थिक कठिनता होगी ही। उसको दूर करने-के विषयमें मेरी सूचनाएं मैं श्री दादासाहेब मावळंकरजी-को कहूंगा। वे तो ४।५ दिनमें विलायतसे आ रहे हैं। मुझे वे देहलीमें मिलेंगे, तब मैं स्मरणपूर्वक उनको इस विषयमें कहूंगा। आप इस विषयमें निश्चित रहें। आपको और क्या चाहिये?"

मेरा प्रथम ४।५ मिनिट ही भाषण हुआ होगा, पश्चात् श्री सरदारजीने ही, जो वास्तवमें मैंने प्रस्ताव करना चाहिये था, वही प्रस्तावके स्वीकारके रूपमें उन्होंने ही कहा!!! मेरा भाषण ४।५ मिनिट हुआ, पर उनका भाषण करीब १० मिनिटतक होता रहा और बड़े प्रसन्न चित्तसे वे बोलते रहे। उन्होंने जो कहा उसके बाद मुझे कहना चाहिये ऐसा कुछ भी नहीं रहा! इसलिये मैंने प्रणाम करके उनकी आज्ञा मांगी। तब प्रणाम करके हंसते हुए उन्होंने फिरसे कहा—

"पंडितजी! वेद-उपनिषद्-रामायण-महाभारतमें भारतीय राष्ट्रकी सभ्यताका सारसर्वस्व है, मानव धर्मका तत्त्व इन ग्रंथोंमें है। भारतकी सभ्यताको जीवित और जाग्रत रखनेके लिये इन ग्रंथोंके प्रकाशनकी आवश्यकता है, इसलिये मेरी योजना मैं श्री मावळंकरजीसे अवश्य ही कहूंगा। वे इस कार्यको करेंगे, निश्चित रहिये। यह तो स्वतंत्र भारतके लिये आवश्यक कार्य है, यह तो अवश्य होना चाहिये और शीघ्र होना चाहिये।"

प्रणाम करके मैं चलने लगा, तो सरदारजीने पास बुलाकर हाथमें हाथ मिलाया और प्रसन्नतासे मुझे जानेकी अनुज्ञा दी।

वास्तवमें जो मुझे कहना चाहिये था, वही सरदारजी बोले! यह श्रवण करके मेरा मन इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी कोई सीमा नहीं थी। मैं अनेक नेताओं और अधि-कारियोंसे मिला था और धर्मग्रन्थ प्रकाशनके विषयमें भी उनसे बोला था। पर इतनी उत्सुकता तथा इतनी आव-श्यकता आजतक किसीने नहीं बतायी थी। अपनी सभ्यताके विषयमें कितना गाढ प्रेम इनके मनमें था, इसका आज मुझे अनुभव मिला। और इससे मुझे अत्यंत ही आनन्द हुआ।

भारतीय सभ्यताकी जागृतिके विषयमें इतनी उत्सुकता दर्शानेवाला, और अत्यंत थकी हुई अवस्थामें भी ऐसे विचार स्वयं प्रकट करनेवाला दुसरा नेता क्वचित् ही मिलेगा।

सरदारजीके स्वर्गारोहणसे भारतीय सभ्यताका एक बड़ा आधार ही चला गया है।

अर्थ-धर्म-मीमांसा

(लेखक— श्री ईश्वरचन्द्रशर्मा कौद्गल्य, आर्यसमाज, काकडवाडी, बंबई ४)

विचारकी आवश्यकता

वेद और स्मृतियोंके अनुसार धर्मका निरन्तर पालन करना मनुष्यके लिये आवश्यक है। धर्मके बिना इहलोक और परलोकमें आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान् मनुने कहा है—

+धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।

अर्थात् धर्मकी हत्या की जाये तो धर्म हत्यारेका नाश कर देता है। धर्मकी रक्षा की जाये तो धर्म रक्षककी रक्षा करता है। भगवान् कणादके अनुसार धर्म सब प्रकारकी उन्नति और मोक्षका कारण है।

यह धर्म किसी एक वस्तुका नाम नहीं है। अनेक प्रकारके आचार-विचार हैं जो सभी धर्म हैं। किसी आचारसे कोई एक लौकिक सुख मिलता है तो किसीसे दूसरा। विविध प्रकारका अभ्युदय किसी एक कर्म या एक ज्ञानका फल नहीं है। मोक्षके लिये भी अनेक साधन चाहिये। अभ्युदय और निःश्रेयसके साधन नाना आचार-विचारोंका सामान्य नाम है धर्म।

इस अर्थके लेनेपर अर्थ भी धर्म है। पर जब धर्म और अर्थका पृथक् व्यवहार किया जाय तब धर्मका इतना व्यापक अर्थ नहीं लिया जाता। भगवान्का ध्यान, ब्रह्मचर्य, यज्ञ दानादिका अनुष्ठान धर्म है। लौकिक सुखोंके प्राप्त करनेका मुख्य साधन अर्थ है।

मनुष्यके लिये अर्थ और धर्म दोनों आवश्यक हैं। कारण, केवल भौतिक शरीरका नाम मनुष्य नहीं है। आत्माके साथ शरीरको मनुष्य कहते हैं। अर्थ शरीरके, और धर्म आत्माके कल्याणका साधन है। भारतीय धर्मशास्त्रोंमें और अर्थशास्त्रोंमें धर्म और अर्थ दोनोंकी विवेचना है। धर्मशास्त्रमें मुख्य रूपसे धर्मका और अर्थशास्त्रमें अर्थका प्रतिपादन है। धर्मशास्त्रके अनुसार अर्थका अर्जन धर्मके अनुकूल होकर करना चाहिये। पर अर्थशास्त्र कई अवसरोंपर धर्मकी सीमासे दूर भी हो जाते हैं। इस विरोधके कारण धर्मशास्त्रने कहा-जहां धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रका विरोध हो वहां धर्मशास्त्र बलवान् है।

×अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः।

इनके विरोधका कारण धर्म और अर्थके स्वरूपमें वर्तमान है। धर्मका अनुभव इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता। धर्मकी प्राप्ति दूसरोंको बिना कष्ट दिये हो सकती है। हो क्या सकती है दूसरोंको हानि पहुंचानेपर धर्म ठहर नहीं सकता। इसके विपरीत अर्थ इन्द्रियोंका विषय है, वह देखा सुना जा सकता है। दूसरोंको बिना कष्ट पहुंचाये अर्थका अर्जन असंभव तो नहीं पर अत्यन्त कठिन अवश्य है। अर्थके अर्जनपर निरन्तर तत्परता रक्खी जाय तो धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। व्यापारी जब अपनी वस्तु बेचकर लाभ उठाना चाहता है तब व्यवहारमें सत्य और अहिंसाकी रक्षा नहीं कर सकता। उसे कुछ न कुछ झूठ बोलना पडता है। लाभ उठाकर पीडा पहुंचानी पडती है। मुख्यरूपसे अर्थपर दृष्टि रखनेके कारण अर्थशास्त्रके साथ धर्मशास्त्रका अनेक अवसरोंपर विरोध हो गया। विरोध होनेपर धर्मशास्त्रने कहा अर्थशास्त्रकी अपेक्षा करके धर्मका पालन करना चाहिये। अर्थशास्त्रने धर्मसे दूर रहकर भी अर्जनके लिये प्रेरणा की। धर्मका संबंध आत्मा और शरीर दोनोंके साथ है। अकेला आत्मा बिना शरीरके धर्मका आचरण नहीं कर सकता। शरीर धर्मका पहला साधन है। शरीर केवल ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, और अपरिग्रह, आदिके सहारे

+ मनुस्मृति, कुल्लूककृत व्याख्या सहित, अध्याय, ८ श्लो. १५, मुंबई १९२५

× याज्ञवल्क्यस्मृति, मिताक्षरासहित, अध्या० २ श्लो० २१, मुंबई १९२६

स्थिर नहीं रह सकता। उसे अन्न वस्त्रादि भौतिक साधन चाहिये। भौतिक साधनोंकी प्राप्ति अर्थके बिना नहीं अतः धर्मशास्त्रने धर्मके साथ अर्थके अर्जनका भी विचार किया। उसने जहांतक हो सका अर्थको धर्मके अनुकूल किया। फिर भी अपरिहार्य समझकर धर्मशास्त्रने अर्थद्वारा सूक्ष्मसे सूक्ष्म मात्रामें धर्मके अतिक्रमणको सह लिया।

इस कारण धर्मशास्त्रकी दृष्टिमें व्यापार ऋतानृत है। अर्थका अर्जन भी सत्य अहिंसा आदिका सर्वथा त्याग करके नहीं हो सकता। व्यापारके लिये जनतामें विश्वास रहना चाहिये। विश्वास बिना सत्य और अहिंसाके नहीं रहता। व्यापार आदिकी उन्नतिके लिये भी सत्य और अहिंसा आवश्यक है। ईश्वरका विश्वास ब्रह्मचर्य आदि धर्म, सत्य और अहिंसाके प्रबल सहायक हो जाते हैं। इसलिये अर्थ-शास्त्रने सत्य, अहिंसा आदिको आवश्यक समझा। उसने वर्ण और आश्रमकी व्यवस्था प्रायः धर्मशास्त्रके अनुसार अंगीकार की। अर्थशास्त्रके साथ धर्मशास्त्रका यह विरोध अल्प मात्रामें है। पर विरोध सदा अल्प मात्रामें नहीं रहा। कई बार यह अत्यन्त तीव्र हो उठा है। कौटलीय अर्थ-शास्त्रमें राज्यकी उन्नतिके लिये इस प्रकारके क्रूर उपायोंका उल्लेख है जिनके विचारसे धर्मप्रेमीका कोमल मन कांप उठता है। * दाण्डकर्मिक और कोशाभिसंहरण आदि अध्यायोंमें इस प्रकारके उपायोंका निर्देश विस्तारसे है। इष्टसिद्धिके लिये घातक उपायों तकका आश्रय लेनेके कारण ही नहीं इसके आगे भी अर्थशास्त्रके साथ धर्मशास्त्रका विरोध है।

धर्मशास्त्रके अनुसार शरीरसे अतिरिक्त अभौतिक चेतन आत्मा और स्थावरजंगमके स्रष्टा परमेश्वरका मानना आव-श्यक है। जीवको किये कर्मोंका फल इहलोक और परलोक दोनोंमें भोगना होता है। पुण्य और पाप दोनोंका फल भोगे बिना जीव नहीं रह सकता है। यज्ञ और दानादि सत्कर्म कभी निष्फल नहीं होते। इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्मोंमें उनका फल मिलेगा ही। अनेक धर्मशास्त्रोंमें अतीन्द्रिय चेतन इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा करनेका भी उल्लेख है। इस प्रकारके विषयोंका विरोध न करके भी अर्थशास्त्र अर्थका निरूपण कर सकता था, पर उसने इन धार्मिक विश्वासोंको अप्रामाणिक असत्य ठहराया। अर्थका स्वरूप स्थूल है उसे इन्द्रियां जान सकती हैं। जहां अर्थ-का कोई रूप प्रत्यक्ष न हो वहां प्रत्यक्ष-मूलक अनुमानसे निश्चय हो सकता है। प्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्षपर आश्रित अनुमानसे स्थूल अर्थका विचार करनेके कारण सदा अतीन्द्रिय रहनेवाले आत्मादि विषयोंपर अर्थ शास्त्रका विश्वास शिथिल हो गया होगा। उसने कहा यह धर्मके आधार भूत पदार्थ न कभी प्रत्यक्ष हुए, न होंगे। इन्हें मानकर व्यवहार करनेसे प्रायः हानि उठानी पड़ती है। इनका न मानना अच्छा। अति प्राचीन अर्थशास्त्र आज उपलब्ध नहीं है। उनके विषयोंका संकलन करके आचार्य कौटल्यने अपने अर्थशास्त्रकी रचना की, यह उपलब्ध है। इसमें जीवात्मा और यज्ञादिका निषेध नहीं है। पर धर्म-शास्त्रोंसे इस प्रकारके कुछ विषयोंको माना है जो केवल शब्दप्रमाण द्वारा सिद्ध हो सकते हैं। धर्मशास्त्र शुभ नक्षत्र देखकर काम करनेके लिये कहते हैं। जिससे परिश्रम व्यर्थ न जाय। × कौटलीय अर्थ शास्त्रका कहना है— नक्षत्रोंकी ओर देखते रहनेसे कार्यकी सिद्धिमें विघ्न हो जाता है। अर्थके लिये अर्थ ही नक्षत्र हैं, तारे क्या कर सकते हैं।

कौटल्यने अपने अर्थशास्त्रमें शुक्राचार्य और बृहस्पतिका बड़ा भारी आदर किया है। आरम्भमें इन दोनोंको नम-स्कार है। शुक्र महाभारतके अनुसार असुरोंके आचार्य थे। असुरोंका अनात्मवाद प्रसिद्ध है। कौटल्यके अनुसार शुक्र दण्डनीतिको छोड़कर और किसीको विद्या नहीं कहते। सब विद्यायें दण्डनीतिपर आश्रित हैं। यह उनका मत है। बृहस्पति परम्पराके अनुसार चार्वाक मतके प्रधान आचार्य हैं। चार्वाक आत्मा और परमात्मा आदिका निषेध करते हैं। वे वेदोंको युक्ति संगत न होनेके कारण प्रमाण नहीं कहते। चार्वाक मतके आचार्य बृहस्पतिने ही अर्थ-शास्त्रकी रचना की होगी। इस सम्भावनाको आचार्य कौटल्यकी इस उक्तिसे आधार मिल जाता है जो बृहस्पति-के अनुयायियोंके अनुसार व्यापार आदि और दण्डनीतिको

---

* कौटलीय अर्थशास्त्र, श्रीमूलासहित, सपुंट २, अधि० २, अध्या० १, २।

× कौटलीय अर्थशास्त्र, श्री मूलासहित, सपुंट ३, अधि० ९, अध्या० ४

विद्या कहती है। जिसने लोक व्यवहारके ज्ञाताके लिये वेदोंको आवरण मात्र कहा है। प्रतीत होता है अन्य प्राचीन अर्थशास्त्र चाहे अनात्मवादी न भी रहे हों पर शुक्र और बृहस्पतिके अर्थशास्त्रमें अनात्मवादका प्रतिपादन किया गया होगा। भारतीय अर्थ शास्त्र दोनों प्रकारके थे। आत्मवादी भी अनात्मवादी भी। इनके अनुसार सहस्त्रों वर्षतक भारतके लोग व्यवहार करते रहे। किसी प्रकारके अर्थशास्त्रका अनुसरण किया गया हो, आत्मवाद अथवा अनात्मवादका प्रचार कभी बलात् नहीं रोका गया। जब लोग धर्मप्रधान हुए तब सुरापान और मांस भक्षण आदि न्यून हो गये। जब अर्थप्रधान हुए तो इनका चलन बढ गया। राज्यके लिये कभी क्रूर उपायोंका आश्रय लिया गया कभी मृदु प्रयोग हुए। आत्मवादी और अनात्मवादी अर्थशास्त्रोंके प्रभावद्वारा लोगोंके जीवनपर केवल इतना भिन्न परिणाम हुआ। भूत चेतनवाद और अभौतिक चेतनवाद, वेदादिके प्रामाण्य और अप्रामाण्यने अर्थके लेन-देनमें और परिवारके व्यवहारमें स्पष्ट प्रत्यक्ष अन्तर नहीं उत्पन्न किया। विश्वासोंमें जितना अन्तर हुआ उतना व्यवहारमें न हुआ। जैन और बौद्ध वेदोंको अप्रमाण कहते थे। वेदमूलक कहकर जिस वर्णव्यवस्थाको लोग मान रहे थे उसका उन्होंने विरोध किया। जैन बौद्धोंके राज्य भी हुए। उनके अर्थशास्त्र भी थे। उनके राज्योंमें भी लोगोंका लौकिक व्यवहार नहीं बदला। राजाओंके वंश बदले, पारलौकिक विषयोंमें विचार बदले पर अर्थ अर्जन एक ही ढंगसे होता रहा उसमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ।

आज भारतमें आचार्य कार्लमार्क्सके अर्थशास्त्रका प्रचार तीव्र वेगसे हो रहा है। युरोप और एशियाके कुछ देशोंमें जितनी शीघ्रतासे इसका प्रसार हुआ है उससे अर्थशास्त्र के इस प्रचण्ड प्रतापका अनुभव सब कर रहे हैं। मार्क्सका सबसे विलक्षण है। भारतीय धर्मशास्त्रके अन्तर्गत अर्थशास्त्र आत्मा परमात्माको मानकर चलते हैं। उनसे इसका भेद स्पष्ट है। अनात्मवादी भारतीय अर्थशास्त्रोंसे भी इसका भारी भेद है। अपनेसे पूर्ववर्ती पाश्चात्य अर्थशास्त्रोंके साथ भी इसका मेल नहीं बैठता। एक तत्व इसका निराला है जिसके कारण यह सबसे विलक्षण हो जाता है। वह तत्व है अर्थके अर्जन करनेका ढंग। धनार्जनके पुराने उपायोंको बिना किसी शंकाके उचित मान सभी अर्थशास्त्री हानि लाभ आदिका विचार करने लगते हैं। उनसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मार्क्सने धनकी प्रचलित उत्पादन शैलीको दूषित पाया उसके अनुसार किसी भी देशमें मुट्ठी भर धनपतियोंके साथ लाखों पीडित भूखे नंगे दरिद्र लोगोंके होनेका कारण पुरानी शैली है। इस पुरानी नीतिका नाश करके लेन-देनके नये ढंगकी प्रतिष्ठा करनी होगी। जिससे अत्याचारके कारण उत्पन्न विषमता दूर हो जायगी। लोगोंमें समता आयेगी। समाजमें अन्याय मूलक आर्थिक वैषम्यको हटाकर अर्थ- साम्य लानेके कारण मार्क्सके मतको साम्यवाद वा समाजवाद भी कहते हैं।

मार्क्सवादियोंके अनुसार साम्यवाद दो हेतुओंके कारण प्रमाण-सिद्ध तत्व हो जाता है। एक हेतु है पूंजीद्वारा उत्पन्न अतिरिक्त मूल्यपर पूंजीपतिका अधिकार। दूसरा हेतु है इतिहासके भौतिकवादके अनुसार निरूपण। इसको ऐतिहासिक भौतिकवाद भी कहते हैं। वस्तुको देखा जाये तो साम्यवादकी उत्पत्तिका कारण वर्गोंका विरोध है। विचार परम्पराके रूपमें साम्यवादके मूलकी प्रतिष्ठा करनेवाले अठारहवीं सदी (ई. सन्) के फ्रांसीसी दार्शनिक हैं। उस कालके दार्शनिक फ्रांसमें अत्यन्त युगान्तरकारी विचारोंको प्रकट कर रहे थे। वे तर्कके अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तुको प्रमाण नहीं मानते थे। सम्प्रदाय प्रकृतिका स्वरूप, समाज, राज्यशैली सबकी तर्कद्वारा सूक्ष्म आलोचना की जाती थी। वस्तुका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिये केवल तर्क साधन था। प्राचीनकालके समाज और राज्यको तर्कके प्रतिकूल बताया गया। अबसे तर्क मार्ग दिखाने लगा। इस कारण मिथ्याविश्वास, अन्याय, और दुर्बलके दलनका स्थान तीनों कालोंमें अबाधित सत्य न्याय और साम्यको लेना होगा।

पर इस कालका तर्कका राज्य धनियोंके आदर्श राज्यसे अधिक नहीं था। न्याय धनियोंका न्याय था। राज्यके विधानके अनुसार समानता धनियोंकी मानी हुई समानता थी। धनियोंकी सम्पत्ति मनुष्यका आवश्यक अधिकार था। अपनेसे पूर्ववर्ती विचारकोंके समान अठारहवीं सदीके महान् विचारक अपने युगकी सीमासे बाहर न जा सके। उस समय सामन्त और धर्मिक वर्गोंके विरोधके

समान आलसी धनियों और दिनरात परिश्रम करनेवाले दरिद्रोंका भी विरोध चल रहा था। इस समय धनीलोग समस्त मनुष्य जातिके प्रतिनिधि बनकर आ खडे हुए। यद्यपि धनीलोग उस समय श्रमिक लोगोंके हितोंकी रक्षा करनेका अभिमान करते थे तो भी श्रमिक वर्गका स्वतन्त्र विरोध समय समयपर प्रकट हो उठता था।

जर्मनीमें किसानोंका संघर्ष हुआ, इंग्लैंड और फ्रांसमें विप्लव हुए। इन विप्लवोंके साथ नवीन विचार भी प्रकट हुए। सोलहवीं और सत्रहवी सदीमें काल्पनिक अक्राधिक साम्यवादका चित्र बनाया गया। अठारहवीं सदीमें यथार्थ साम्यवादके सिद्धान्त मोरेली और मेबलीने प्रकट किये। अक्राधिक साम्यवादका निरूपण तीन महान् विचारकोंने किया। पहले हैं साइमन, इनपर धनी और दरिद्र दोनोंकी अवस्थाने प्रभाव डाला था। फेरियर और ओवेन इंग्लैंडके थे जहां पूंजीपतियोंकी शैलीसे उत्पादनका अत्यन्त परिष्कार हो चुका था। उन्होंने पूंजीवादके कारण उत्पन्न वर्ग-विरोधको मिटानेके लिये फ्रांसीसी भौतिकवादके आधारपर योजनायें बनाईं। ये तीनों तात्कालिक अवस्थाओं द्वारा प्रकट होनेवाले दरिद्रोंके कष्ट निवारण करनेके लिये मुख्य रूपसे यत्न नहीं करते थे। ये समस्त मनुष्य जातिको दुःखसे छुटकारा दिलाना चाहते थे। तर्क और त्रिकालमें अबाधित नित्य न्यायके राज्यका स्थापित करना इनकी अभिलाष थी। पर इनका राज्य फ्रांसीसी दार्शनिकोंके राज्यसे बहुत भिन्न था। इनके लिये उन दार्शनिकोंकी सिद्धांत परंपरा पर-प्रतिष्ठित धनिकसमाजकी युक्ति और न्यायसे संगत न था। इस कारण सामन्त प्रथाके, अथवा समाजकी अन्य प्रचीन प्रथाओंके समान इस धनिक समाजका लोप भी होने जा रहा था। यदि अब तक शुद्ध तर्क और न्यायका राज्य नहीं हुआ तो उसका कारण लोगोंका अज्ञान था। लोगोंने अभीतक तर्क और न्यायके यथार्थ स्वरूपको समझा नहीं था। प्रतिभाशाली मनुष्यकी न्यूनता थी। वह अब नहीं रही। अब अर्थ दशाका परीक्षक आ गया है और उसने सत्यकी पहिचान कर ली है। सत्यकी इस समय जो पहचान हुई वह ऐतिहासिक विकासकी शृंखलाका अपरि-हार्य परिणाम नहीं थी। यह एक सुखद घटना है जो पह-लेसे निश्चित नहीं थी। इस सत्यका द्रष्टा आजसे पांच सौ वर्ष पहले भी उत्पन्न हो सकता था। लोगोंको वह पांच सौ वर्षोंके अज्ञान और दुःखसे बचा सकता था।

उस समयके इंग्लैंड फ्रांस और जर्मनीके समाजवादी सब विद्वान् इसी प्रकारका विचार रखते थे। इन सबके लिये समाजवाद शुद्ध सत्य तर्क और न्यायका प्रकाशन है। केवल उसके प्रकट होनेकी आवश्यकता है। उसके अनन्तर वह स्वयं अपनी शक्तिसे संसार जीत सकता है। शुद्ध सत्य काल, देश और मनुष्यके ऐतिहासिक रूपान्तरोंसे बंधा नहीं है। वह कहां किस समय प्रकट होता है यह केवल आक-स्मिक घटना है।

इस विषयमें इतना ध्यान रखना चाहिये, शुद्ध सत्य, तर्क, और न्याय प्रत्येक मतके प्रतिष्ठापकके अनुसार भिन्न हो जाते हैं। इस कारण इनका परस्पर विरोध होने लगता है। उससे समस्तवादोंका सार लेकर समाजवाद मिश्र रूपमें आ जाता है। इतनेसे समाजवाद प्रामाणिक सत्य नहीं बनता। उसके लिये यथार्थ आधारपर प्रतिष्ठित होना चाहिये।

अठारहवीं सदीके फ्रांसीसी दर्शनके साथ और उसके अनन्तर जर्मनीके नये दर्शनका उदय हुआ जिसकी परम्परा हीगलमें आकर समाप्त हुई। इसने कथा (वाद-प्रतिवाद) की शैली फिरसे अंगीकार की। यह इसका विशेष गुण है। प्राचीन यूनानी परीक्षक जन्मसे कथा शैलीके परीक्षक थे। अरिस्टाटल-अरस्तु-ने कथात्मक परीक्षाके आवश्यक अंगोंका निरूपण बहुत पहले कर दिया था। नई दर्शन शैली इस कालमें इंग्लैंडके प्रभावके तर्ककी अतिभूतवा-दीय (मेटाफिजिकल) रीतिमें कठोरतासे बंध गई। विचारकी कथात्मक और अतिभूत वादीय शैलीका संक्षिप्त स्वरूप इस अवसरपर देख लेना चाहिये।

जड प्रकृतिपर अथवा मनुष्यके इतिहासपर विचार कर-नेसे प्रतीत होता है कि कोई भी रूप स्थिर नहीं है। प्रत्येक वस्तु आती है, उसके परिणाम होते हैं, अन्तमें उसका विलय हो जाता है। यूनानके प्राचीन दार्शनिकोंका यह मत था तो युक्त, पर था अपने विकासहीन बीज रूपमें। पहले पहल हेरक्लीटसने इसका स्पष्ट आकार प्रकाशित किया। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु है भी और नहीं भी। सदा गतिमें है। रूपान्तरमें आ रही है। निरन्तर प्रकट होती है

और विलीन होती है। यद्यपि यह समस्त प्रकृतिका स्वरूप है, तो भी इससे अवान्तर रूपोंका स्पष्ट दर्शन नहीं होता। जबतक हमें इनका ज्ञान नहीं होता तबतक समस्त रूपका पूर्ण साक्षात्कार नहीं हो सकता। अवान्तर रूप जाननेके लिये उनको प्राकृतिक अथवा ऐतिहासिक संबंधसे पृथक् कर लेना चाहिये। प्रत्येककी पृथक् पृथक् परीक्षा करनी चाहिये। इसकी प्रकृति क्या है, कारण कौन है, और कार्य कौन है। यह मुख्य रूपसे प्राकृतिक और ऐतिहासिक ज्ञानका काम है। प्रकृतिकी यथार्थ परीक्षाका आरम्भ अलेग्जेंड्रियां कालके यूनानी विद्वानोंने किया था। पीछे मध्यकालमें अरब लोगोंने उसका विस्तार किया। प्रकृतिके तात्त्विक विज्ञानका आरम्भ पंद्रहवीं सदीके उत्तरार्धसे होता है। तबसे यह द्रुतगतिके साथ बढ रहा है। पहिले चार सौ वर्षोंसे प्रकृतिके विज्ञानमें जो वृद्धि हुई उसमे कई तत्वों-का निश्चय हुआ। वे तत्व हैं— प्रकृतिका पृथक् भागोंमें विश्लेषण, प्राकृतिक प्रक्रियाओंका वर्गीकरण, शरीरकी आभ्यन्तर रचनाका विभिन्न रूप। पर परीक्षाकी इस शैली-से लोग प्राकृतिक पदार्थों और प्राकृतिक परिणामोंकी प्रक्रियाको वस्तुओंके समस्त संबन्धोंसे पृथक् रूपमें देखने लगे। इस कारण गतिमें नहीं स्थिर दशामें आवश्यक रूपमें एक परिणामसे दूसरे परिणाममें नहीं अपरिणामी रूपमें, जीवनमें नहीं मरणमें वस्तुओंका परीक्षण होने लगा। इस प्रकारकी परीक्षा जब प्राकृतिक ज्ञानसे दर्शनमें आई तब विचारमें आने लगी संकुचित मनोवृत्ति, परीक्षाकी अति भूतवादीय शैली।

अति भूतवादीके लिये वस्तु और उनके ज्ञान पृथक् किये हुए हैं। एक दूसरेसे पृथक् करके उनका विचार होना चाहिये। उसके लिये वस्तु एक ही प्रकारकी हो सकती है। विद्यमान हो सकती है अथवा अविद्यमान। एक वस्तु एक कालमें हो भी और न भी हो यह असंभव है। विधि और निषेध सर्वथा एक दूसरेके विरोधी हैं। कार्य और कारण परस्पर भिन्न हैं, दोनों एक नहीं हो सकते। पहली दृष्टिमें यह विचारयुक्त प्रतीत होता है, कारण यह बुद्धिके अनुकूल है। पर ज्योंही प्रकृतिके विशाल संसारमें प्रवेश किया जाये आध्यात्मिक शैलीका दार्शनिक माधुर्य में डूबने लगता है। अति भूतवादीय शैलीका विचार शीघ्रतासे वा देरसे उस सीमापर जा पहुंचता है जिससे परे वह नहीं जा सकता। उसके सामने व्याघात आ जाते हैं जिनमें वह मार्ग भूल जाता है। वस्तुओंके देखते हुए उनके परस्पर संबन्धोंको आंखोंसे ओझल किया जाये तो यही दशा होती है। यह जब उनकी सत्ताको देखता है तब आविर्भाव और तिरोभावको नहीं देखता। वस्तु दिखाई देती है पर इसको उनकी गति नहीं दीखती। इसे वृक्ष दिखाई देता है पर शाखा नहीं। प्रत्येक शरीरधारी प्राणी जिस क्षणमें वहीं है उसी क्षण वही नहीं है। प्रत्येक क्षणमें शरीर बाहरसे प्राकृतिक भाग लेकर अपनेमें मिलाता भी है और अन्दरसे बाहर फैंकता भी है। प्रतिक्षण शरीरके कोष मरते हैं और नये उत्पन्न होते हैं। अल्पकालमें वा चिर-कालमें शरीर पूर्ण रूपसे नया हो जाता है नये परमाणु पुरानोंका स्थान ले लेते हैं। सूक्ष्म परीक्षासे ज्ञात है कि विधि और निषेधके समान दोनों सीमामें जितनी विरुद्ध हैं उतनी परस्पर अविभाज्य भी हैं। समस्त विरोधोंके रहते हुए भी वे एक दूसरेके अन्दर प्रवेश कर जाती हैं। कार्य और कारणकी भी यही दशा है। दो पदार्थोंमें एकको कारण और दूसरेको कार्य कह सकते हैं। पर जब इनका संसारके साथ संबन्ध देखते हैं तब कार्य और कारण निरंतर अपना स्थान बदलते रहते हैं। अब जो यहां कारण है वह वहां तभी कार्य बन जाता है। ठीक यही दशा कार्यकी भी है।

अतिभूतवादके अनुसार इस शैलीकी प्रक्रियाका कोई भी रूप संगत नहीं है। कथात्मक विचारके खरे खोटे-पनको जाननेके लिये प्रकृति कसौटी है। आजकल प्रकृतिका ज्ञान बहुत बढ गया है, और नई नई कसौटियां उपस्थित कर रहा है, इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। प्रकृतिके परिणाम परीक्षा करनेपर कथात्मक विचारके अनुकूल और अति भूतवादके प्रतिकूल सिद्ध होते हैं। विश्व और उसमें क्रमिक परिणाम, मनुष्य जातिकी नई नई दशायें, और इनका मनुष्यके मनपर प्रतिबिम्ब यह सब जानना हो तो कथात्मक विचारका आश्रय लेना होगा। जर्मनीका अत्यन्त आधुनिक दर्शन इस रीतिसे चला है। कांटसे यह आरम्भ हुआ और हीगलसे समाप्त हुआ। इस दर्शनसे समस्त

प्राकृतिक ऐतिहासिक और आध्यात्मिक संसार परिणामके निरन्तर गति, रूपान्तर, और विकासके रूपमें सामने आया। इस दृष्टिसे मनुष्यका इतिहास बिना समझे-बूझे की हुई क्रियाओंका उलझा हुआ जाल नहीं प्रतीत होता, जिसको गंभीर दार्शनिक तर्कके सामने असत्य होना पडे। उसकी यथासंभव शीघ्र उपेक्षा नहीं करनी पडती। अब यह क्रमिक परिणामोंकी परम्पराके रूपमें है। इसके अतिरिक्त, संबन्धोंकी व्यवस्थाका जानना तर्कके लिये आवश्यक हो जाता है।

हीगल इस कार्यमें सफल नहीं हुआ, यह इस विषयमें मुख्य वस्तु नहीं है। कथात्मक विचारका निरूपण उसका युगान्तरकारी काम है। निःसंदेह इस कामको कोई दूसर अकेले नहीं कर सकता था। सन्त साइमनके समान हीगल अपने युगका यद्यपि महान् आचार्य था तो भी उसका ज्ञान सीमित था। पहला कारण, उसका अपना ज्ञानक्षेत्र नियंत्रित था। दूसरा कारण, उस युगका ज्ञान विस्तार और गाम्भीर्यमें परिमित था। इसके अतिरिक्त तीसरा कारण भी था। हीगल शुद्ध ज्ञानवादी था, इसके अनुसार मानसिक विचार सत्य वस्तुओं और परिणामोंमें न्यूनाधिक मात्रामें बुद्धिद्वारा कल्पित प्रतिबिम्ब नहीं थे। प्रत्युत वस्तु और उनके परिणाम शुद्ध ज्ञानके सत्य प्रतिबिम्ब थे, सत्य पर बनाये हुए सत्य। शुद्ध ज्ञान कहीं संसारके प्रकट होनेसे पहले वर्तमान था। विचारकी प्रक्रियाने संसारके पदार्थोंके संबंध उलट दिये। हीगलके अनेक विचार अयुक्त थे। इनमें आन्तरिक व्याघात था जिसका समाधान नहीं। एक ओर ये मनुष्यके इतिहासको परिणामशील समझते हैं। उसे अपने स्वभावके कारण किसी भी कथितमात्र शुद्ध सत्ताके उद्भूत होनेपर परिणामकी चरम सीमापर पहुंच जानेमें असमर्थ कहते हैं। दूसरी ओर ये शुद्ध सत्योंके पुंज होनेका अभिमान करते हैं। प्राकृतिक और ऐतिहासिक ज्ञानकी कोई भी व्यवस्था जो त्रिकालमें अबाधित हो, कथात्मक विचारके मूलभूत नियमोंके विरुद्ध है। कथात्मक विचारके अनुसार बाह्य संसारका व्यवस्थित ज्ञान निरन्तर लंबे लंबे पद रखता रहता है।

जर्मनीके शुद्ध ज्ञानवादको लोगोंने सर्वथा अयुक्त अनुभव किया। इस कारण स्वाभाविक रूपसे वे प्रकृतिवादकी ओर झुके। इतना ध्यान रहे, अठारहवीं सदीके साधारण अतिभूतवादके तर्कपर चलनेवाले, सर्वथा यन्त्रतुल्य प्रकृतिवादकी ओर नहीं। आधुनिक प्रकृतिवाद इतिहासको मानवताके वृद्धिशील परिणामके रूपमें समझता है। यह प्राकृतिक ज्ञानके उन नवीनतम आविष्कारोंका परम मित्र है जिनके अनुसार प्रकृतिका भी इतिहास है। इसके अनुसार नक्षत्र आदि दिव्य पदार्थ भी शरीरी प्राणियोंके समान प्रकट होते हैं और विलीन हो जाते हैं। आवश्यक रूपसे यह प्रकृतिवाद कथात्मक है। प्रकृतिवादके इस युगान्तर होनेसे बहुत पहले कुछ घटनायें हो गईं जिनके कारण इतिहासके विषयमें भी विचार बहुत बदल गया। १८३१ ई. में श्रमिक वर्गका पहला उत्पादन लियोंसमें हुआ। १८३८ और १८४२ के बीचमें इंग्लैंडका राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन अपनी चरम सीमापर जा पहुंचा। आकिंचन और धनिकोंके बीचमें वर्ग संघर्ष युरोपीय देशोंके इतिहासमें अगली पंक्तिपर आ गया। पूंजीवादी अर्थशास्त्री कहते थे- पूंजी और श्रमके हित एक हैं, व्यवसायका अबाध संघर्ष संसारव्यापक ऐश्वर्य और परस्पर प्रेमका कारण है। इस मतको घटनाओंने असत्य प्रमाणित कर दिया। इतिहासके विषयमें पुराना ज्ञानवादियोंका मत भौतिक सुखोंपर आश्रित वर्ग-संघर्षको कुछ भी नहीं समझता था। वस्तुओंका उत्पादन और आर्थिक संबन्ध इसके अनुसार कभी कभी अकस्मात् प्रकट हो उठता था, वह भी सभ्यताके इतिहासमें गौण होकर। नयी घटनाओंने अतीत इतिहास की नये ढंगसे परीक्षा की। पुराना इतिहास वर्ग-संघर्षका इतिहास सिद्ध हुआ। समाजके स्पर्धाशील वर्ग. उत्पादन और विनिमयके कारण उत्पन्न हुए हैं। समाजकी आर्थिक रचना अपने युगकी न्याय और राजनीतिकी व्यवस्थाका मूल आधार है। धार्मिक और दार्शनिक मत भी इसीपर प्रतिष्ठित हैं। अब ज्ञानवाद अपने अन्तिम आश्रय इतिहासके दर्शनसे हटा दिया गया था। इतिहासके विषयमें प्राकृतिक अर्थात् भौतिक मतका निरूपण हुआ। मनुष्यके ज्ञानका परीक्षण उसकी सत्ता द्वारा, जीवन द्वारा हुआ। पहलेके समान उसके ज्ञानके द्वारा, उसकी सत्ता, जीवनका नहीं।

इसमें संदेह नहीं कि पहलेका समाजवाद पूंजीवादी उत्पादन और उसके परिणामोंकी आलोचना करता था। पर पूरी

परीक्षा नहीं कर सका। इस कारण इसका उसपर आधिपत्य भी नहीं था। जो कुछ करनेको बचा था, वह था, ऐतिहासिक रूपमें पूंजीवादी उत्पादनका रूप, किसी विशेष कालमें उसका अनिवार्य उद्गम और विलय। पूंजीवादी उत्पादनका एक अन्य स्वभाव प्रकाशित होने योग्य था जो अभीतक छिपा पड़ा था। आलोचकोंने इसके दुष्परिणामों-पर प्रहार किये थे पर वस्तुके अपने रूप, स्वभावपर नहीं। अतिरिक्त मूल्यके आविष्कारने इस कामको पूरा किया। पूंजीवादी उत्पादन और इसके द्वारा आक्रान्त श्रमिकका शोषण भृतिहीन श्रमपर आश्रित है। यदि पूंजीपति पूरी भृति देकर भी श्रमिककी श्रमशक्ति खरीद ले तो भी वह भृतिकी अपेक्षा अधिक मूल्य छीन लेता है। अतिरिक्त मूल्यके कारण पूंजीकी राशियां निरन्तर ऊंची होकर पूंजीपतियोंके हाथमें आने लगती हैं।

× यह है एंगल्स आदि मार्क्सके जीवन संगी और अनुगामी अन्य विचारोंके अनुसार मार्क्सके समाजवादका असाधारण स्वरूप। आज यह समाजवाद विचार मात्र नहीं रहा। रूसमें इसके अनुसार तैंतीस वर्षोंसे शासन हो रहा है। अब इसपर अव्यावहारिक, काल्पनिक होनेका आक्षेप नहीं हो सकता।

मार्क्सवादके कुछ परीक्षकोंका कहना है कि समाजवाद सर्वथा मार्क्सोपज्ञ नहीं है। मार्क्ससे बहुत पहले ग्रे और होडजकिनने इस विषयमें निर्देश दिये, पर वे प्रसिद्ध नहीं थे। कुछ प्रसिद्ध विचारक भी थे जो उससे पहले बहुत काम कर चुके थे। उनमेंसे कुछके विचार वह स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लेता है। कुछके विचार लेता तो है पर तिरस्कारके साथ।

अराजकतावादियोंको अव्यावहारिक कहा जाता है पर वे अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये पर्याप्त तत्पर थे। संयुक्त राज्य अमेरिकामें उनके विचारोंको परीक्षणका अवसर भी मिला। ब्रुकफार्म, न्यूहोप = नई आशा, न्यू हार्मनी = नया सामञ्जस्य, न्यू एण्टर प्राइज = नया यत्न, नामके आन्दोलनोंमें उनका परीक्षण हुआ था। हाथोर्न, होरेसग्रो, ली, रिप्ली, अलबर्ट ब्रिस्बेन और हेनरी जेम्सने इन विचारोंके आन्दोलन चलाये, जो कुछ परिवर्तित रूपमें अब भी जीवित हैं। इन विचारोंने व्यापार संघ और सहकारी संघटनोंके विस्तारमें सहायता दी। उन्नीसवीं सदीके पूंजीवादी समाजका विश्लेषण भी इनके द्वारा हुआ। लोग कहते हैं कि मार्क्ससे पहले सब अर्थशास्त्री पुराने सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनेके लिये थे, केवल मार्क्स परीक्षक था। पर यह युक्त नहीं। आदमस्मिथ पुराने सिद्धान्तकी व्याख्या नहीं करता था वह सुधारक था। उसने पुरानी जीर्ण-शीर्ण प्रक्रियासे विभिन्न आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रतिपादन किया था। उसने चेतावनियों द्वारा व्यापार स्पर्धाके भविष्यमें होनेवाले दुष्परिणामोंको स्पष्ट रूपमें दिखाकर नयी आर्थिक व्यवस्था प्रकाशित की। उसके अनन्तर गाडविन, चार्ल्सहाल, ग्रे, थाम्पसन और राबर्ट ओवेन ने १७९३ ई. सनसे १८२५ तक तीन दशकोंमें उस कालकी आर्थिक व्यवस्थापर अत्यन्त विस्तृत आलोचना की। इन सबके अनुसार यन्त्रद्वारा होनेवाला व्यापार श्रमी लोगोंकी स्वतन्त्रता, समानता और प्रातिस्विक संपत्तिका विनाश करता है। इस कारण ये उसका विरोध करते थे। इनमेंसे अत्यन्त प्रसिद्ध ओवेन प्रकृतिवादी दार्शनिक और परीक्षाशील अराजकतावादी था। उसके अनुसार परंपरा, शिक्षा, और चारों ओरकी अवस्था, नयी संततिको परस्पर मिलकर काम करनेके लिये प्रेरित कर सकती है। फ्रांसके फेरिअर और सन्त साइमनके ग्रन्थोंमें यह विशेष भाव मुख्य रूपसे है। अराजकतावादियोंका बलप्रयोगकी अपेक्षा सहकारितापर अधिक बल था।

कमसे कम तीन लेखकोंने मार्क्ससे पहले पूंजीवादी व्यापारकी नयी अवस्थाओं और समाजपर पड़नेवाले उनके प्रभावोंका संगतिके साथ निरूपण किया। इनमें एक अंग्रेज माल्थस, दूसरा जर्मनीका रोडबर्टस, तीसरा स्विटजरलैंडका निवासी सिसमंडी है। डार्विनसे पहले लामार्कने जो काम किया उसके तुल्य काम सिसमंडीने मार्क्ससे पहले किया।

समाजवादमें मार्क्सका कितना आविष्कार है और कितना दूसरोंका इतनी इस विवादकी सीमा है। इस विचारमें मैं नहीं जाऊंगा।

मार्क्सीय समाजवादका संबन्ध अनेक विषयोंके साथ है। उन सबकी परीक्षाका अवसर नहीं है। जिन प्रमाणोंसे

× ड्यूरिंग मत खंडन, भूमिका पृ. २३-३१

धर्मकी, ब्रह्माण्डके कर्ता ईश्वर, शरीरसे भिन्न चेतन आत्मा जन्मान्तरवाद और कर्मफल व्यवस्थाकी सिद्धि होती है। उनसे समाजवादके साधक प्रमाणोंका विरोध है वा नहीं इसका प्रधानरूपसे विचार करना है। मार्क्स कथात्मक प्रकृतिवादको अंगीकार करते हैं। उनके अनुसार प्रकृति और उसके विकारोंके अतिरिक्त चेतन आत्मा अथवा परमात्माकी सत्ता नहीं है। "पूंजी" के प्रथम भागके दूसरे संस्करणकी भूमिकामें उन्होंने लिखा-मेरी कथात्मक रीति हीगलकी रीतिसे भिन्न ही नहीं उसके प्रतिकूल भी है। हीगलके मतमें मनुष्यके मस्तिष्ककी जीवन-प्रक्रिया अर्थात् विचार-प्रक्रिया 'ज्ञान' नामक स्वतन्त्र वस्तु है। वहाँ सत्य संसारको प्रकट करनेवाली मूल शक्ति है। इसके विपरीत मेरे मतमें ज्ञान मनुष्यके मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित, विचारके विविध रूपोंमें परिवर्तित, सत्य प्राकृतिक संसारके अतिरिक्त कुछ नहीं है। मार्क्स और एंगल्स, लेनिनके अनुसार, बुखनर, फोग्ट, मोलेशोटके हीन भौतिकवादको तो क्या फायरबाखके उत्तम भौतिकवादको भी दोषयुक्त समझते थे। उन्होंने अभौतिक जीव और विश्वके स्रष्टा ईश्वर आदिका निषेध भौतिकवादी दार्शनिकोंके समान युक्तियोंद्वारा नहीं किया। वे इनकी सत्ताको सामान्य जनोंके युक्ति विरुद्ध मिथ्या विश्वासपर आश्रित मानकर चले हैं।

आजकल रूसमें समाजवादी शासनके अन्दर भौतिकवादका प्रचार हो रहा है। शासनके अधिकारी लोग रूसके समाजवादको मार्क्सका अनुगामी मानते हैं। + 'समाजवादी विचार' नामक त्रैमासिक पत्रमें 'अध्यापिकोंका समाचार पत्र' नामक पत्रके दो लेखोंका सार छपा है। पहलेमें लेखके कुछ अंशका अनुवाद है। दूसरा मूल लेखका संक्षेप है। दोनों लेख रूसके आधुनिक समाजवादी स्कूलोंमें धर्म विरोधी प्रचारकी अवस्थाका वर्णन करते हैं। पहले लेखका अंश इस प्रकार है— यह नहीं भूलना चाहिये कि बच्चेपर केवल स्कूलका प्रभाव नहीं पडता। वह अपने समयका बडा भाग स्कूलसे बाहर बिताता है। मित्रों और बडे-बूढोंके साथ कुछ परिवारोंमें पूंजीवादके खंडहर अभी नहीं नष्ट हुए। यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि उससे बच्चेका दृष्टिकोण और विश्वास प्रभावित होता है। विद्यालयको प्रत्येक उपायसे बच्चोंपर चारों ओरकी परिस्थिति द्वारा पडनेवाले प्रभावको रोकना चाहिये। अपने अधिकार और प्रभाव द्वारा विरोधी प्रभाव डालना चाहिये।

आजकल कुछ अध्यापक हैं जो बच्चोंमें पक्षपात, मिथ्या विश्वास और धार्मिक विचारके प्रकट होनेपर उपेक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त वे वस्तुतः छात्र जीवनको समझते हैं वा नहीं, जीवनकी व्याख्या कर सकते हैं वा नहीं इस विषयमें उदासीन रहते हैं। धार्मिक विश्वासोंके जब कभी चिन्ह प्रकट होते हैं तब उनकी ओर उदासीन होनेका पहला कारण हमारी सम्मतिमें यह है कि अध्यापक विद्यालयके छात्रोंमें धर्म विरोधी काम करनेके लिये उचित ध्यान नहीं देते। इन्हीं छात्रोंने आगे चलकर अध्यापक बनना है। दूसरा कारण यह कि अध्यापक समाजवादी राज्यकी धर्मके विषयमें नीतिको पूरी रीतिसे नहीं जानते। 'अध्यापकोंका समाचार पत्र' के कार्यालयमें कुछ पत्र आये हैं उनसे पता चलता है कि धर्म और उसकी रीतियोंके विषयमें छात्र जब प्रश्न करते हैं तब अध्यापक प्रायः टाल देते हैं, उत्तर नहीं देते। कई पत्रोंमें इस प्रकारके अध्यापकोंके उदाहरण हैं जो दुर्भाग्यसे छात्रोंको शिक्षा देनेमें ही असमर्थ नहीं है, प्रत्युत स्वयं भी धार्मिक विश्वासोंके बन्दी हैं, और कभी कभी धार्मिक आचारोंका पालन करते हैं। अध्यापकोंकी राजनैतिक शिक्षामें जो अधूरा काम हुआ है उसका यह परिणाम है।

बच्चोंमें बिना धर्म विरोधी प्रचारके अध्यापन अथवा शिक्षा-कार्यके महत्वको उन्नत नहीं किया जा सकता। दैनिक जीवनमें बच्चे प्रायः प्रकृति और समाजके विषयमें तर्क विरुद्ध बातें सुनते हैं। आसपासके लोग अथवा उनके परिवारके लोग जिन धार्मिक रीतियोंको करते हैं उनका प्रभाव भी उनपर पडता है। कभी कभी बच्चों और युवाओंको धार्मिक क्रियाओंमें भाग लेनेके लिये बाधित होना पडता है।

+ समाजवादी विचार, "सोवियत स्टडीज" खण्ड १, अप्रैल १९५० नं० ४, बेसिल ब्लैकवेल, ब्राडस्ट्रीट आक्सफोर्ड। रूसके सामाजिक और आर्थिक संस्थानोंका आलोचक त्रैमासिक पत्र।

अध्यापकोंको इस प्रकारके अवसरोंकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये, प्रत्युत उन्हें तर्कके साथ, ढंगसे धर्मका तर्क-विरुद्ध स्वरूप दिखाना चाहिये। मिखिन इवानोविचके लेनिन कहा करते थे कि धर्म अन्धकार है, इसके साथ प्रकाश लेकर युद्ध करना चाहिये। विद्याकी प्रेरणा और व्यवस्था करनेवाले मार्क्स, ऐंगल्स, लेनिन और स्टालिनने धर्मके सामाजिक मूलोंका प्रकाशन किया है। मार्क्सने उचित ही कहा था कि धर्मके प्रतिकूल युद्ध, परम्परा संबन्धसे उस समाजके प्रतिकूल है जो धर्मकी रक्षा करता है। लेनिनने धर्मके विषयमें निम्नलिखित शब्द कहे थे— " धर्म एक प्रकारका आध्यात्मिक दबाव है। जो लोग दूसरोंके स्वार्थके लिये काम करनेके कारण दलित हो रहे हैं, आवश्यक वस्तुओंका अभाव जिन्हें व्याकुल कर रहा है, उनपर यह दबाव छाया रहता है। उत्पीडकोंके विरुद्ध संग्राममें पीडितोंकी असहाय दशा, उनमें यह विश्वास उत्पन्न करती है कि मरनेके अनन्तर सुखी जीवन अवश्य मिलेगा। यह धारणा जंगली लोगोंकी उस धारणाके समान है जिसके अनुसार वे प्रकृतिके विरुद्ध संग्राममें पराजित होकर देवता भूत और चमत्कार आदिमें विश्वास करने लगते हैं। जीवनभर श्रमसे थके और सुख साधनोंसे रहित मनुष्यको धर्म शांति और संतोषके साथ इस लोकमें रहनेका उपदेश देता है। पर जो दूसरोंके श्रमपर जीते हैं उन्हें इस जन्ममें भलाई करनेके लिये कहता है। उनके सारे उत्पीडनको न्यायोचित ठहराकर परलोकमें स्वर्गीय सुख पानेके लिये सस्ते दामपर प्रमाणपत्र दे देता है। धर्म लोगोंके लिये अफीम है। धर्म एक प्रकारका आध्यात्मिक मद्य है। जिसमें पूंजीका दास अपनी मानवीय सत्ता और मानवीय जीवनकी आवश्यकताको डुबा देता है।"

क्रान्तिसे पहले रूसमें धर्मका विशेष स्थान था, विचार स्वतन्त्रताकी कोई बात न थी। राज्यद्वारा स्वीकृत धर्मपर विश्वास निरंकुश राजतंत्रका सहायक था। इसको इस प्रकारके विशेष अधिकार प्राप्त थे जो अन्य धर्मोंके पास नहीं थे। पूंजीपतियोंके संसारमें धर्म भी विद्यालयोंका पठनीय विषय है। प्रकृतिका विज्ञान विकृत रूपमें पढाया जाता है। संघराज्य अमेरीकाके विद्यालयोंमें डारविनके विकासवादका पढाना रोक दिया गया है। अक्टूबरकी बडी समाजवादी क्रान्तिने राज्यके धर्मका अन्त कर दिया है। विचार स्वतंत्रताकी पूरी प्रतिष्ठा हो गई है। समाजवादी दल धर्म विरोधी प्रचारमें लिये दृढ है।

दूसरे लेखमें कहा गया है— सभी धर्म भौतिक संसारको क्षणिक और आध्यात्मिक संसारको सत्य और नित्य कहते हैं। यह मनुष्यकी सहज चेतना और विज्ञानके परिणामोंके विरुद्ध है। धर्म समाजमें विरोधिका काम करता है। भूमिपर जीवनकी उन्नति और उत्पीडनका नाश करनेके लिये जो यत्न किये जाते हैं उनमें विघ्न डालना धर्मका काम है। पुराने उत्पीडक जगत् और नये समाजवादी जगत्में भारी विरोध आज चल रहा है। उत्पीडक श्रेणियां पुरानी रीतियां स्थिर रखनेके लिये धर्मकी ओर अधिक ध्यान दे रही हैं। धर्मके सामाजिक मूल हैं शोषण, दरिद्रता, बेकारी, और अज्ञान। इनका समाजवादी रूसमें नाश कर दिया गया है। धर्म भूतकालका एक खंडहर रह गया है।

इससे स्पष्ट है कि मार्क्सवादी अनात्मवादी हैं। वे समाजवादका स्वाभाविक संबन्ध मानने लगे हैं। पर किसी गूढ तत्त्वके आविष्कारकका कुछ विचार मान लेना एक वस्तु है, और उनका स्वाभाविक संबंध दूसरी वस्तु है। संबंध स्वाभाविक भी होते हैं और नैमित्तिक भी, स्वाभाविक संबन्ध कभी छूटता नहीं। पर नैमित्तिक संबन्ध निमित्तके हट जानेपर नहीं रहता। न्यायशास्त्रके प्रसिद्ध उदाहरण धूम और अग्निके संबन्धको लीजिये। धूम कार्य है और अग्नि कारण है। कार्यका कारणके साथ स्वाभाविक संबन्ध है, न्यायकी परिभाषामें व्याप्ति है, इस कारण धूम कभी बिना अग्निके नहीं रहता। कारणका कार्यके साथ संबन्ध स्वाभाविक नहीं है, कारण बिना कार्यके भी रह सकता है। अग्नि बिना धूमके भी पाई जाती है। अंगार, सूर्यकी धूप, और बिजली आदिको बिना धूमके देखा जाता है। कुछका संबन्ध दोनों ओरसे स्वाभाविक होता है। अग्नि और तापका संबन्ध इसी प्रकारका है। अग्नि बिना तापके और ताप बिना अग्निके नहीं रहता। जिन दो में एकका भी स्वाभाविक संबन्ध न हो उनका नैमित्तिक सम्बन्ध हो सकता है। देवदत्त और यज्ञदत्त साथ साथ भी चलते हैं और एक दूसरेके बिना भी। इनका संबन्ध स्वाभाविक नहीं, नैमित्तिक है। समाजवाद और अनात्मवादका कार्य-कारण भाव नहीं है। अन्य प्रकारका भी कोई इस प्रकारका संबन्ध नहीं प्रतीत होता जिसे स्वाभाविक कहा जा सके। श्रमिकोंसे अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न होता है उसपर पूंजीपति मिल स्वामी वा बडे ग्रामाधिपतिका अधिकार अनुचित है। इतनेका नाम है समाजवाद। यह उसका असाधारण स्वरूप है। इसका अनात्मवादके साथ

कार्य कारण भाव नहीं है। दूसरा भी कोई स्वाभाविक संबन्ध नहीं दिखाई देता। इन दोनोंका संबन्ध निमित्तके आ जानेसे हो गया है। निमित्तको रहने देनेपर वह संबन्ध भी नहीं रहता। मार्क्स और उनके साथी ऐंगेल्स समाजवादको भी मानते हैं और अनात्मवादको भी। केवल इतनेसे दोनोंका संबन्ध है। अनात्मवाद न मानकर आत्मा जन्मान्तर आदि अंगीकार करते हुए भी समाजवादको प्रामाणिक कह सकते हैं। कुछ विचार किसी दर्शन अथवा मतमें मान लिये जाते हैं इतनेसे दर्शन वा मतके समस्त विचारोंका परस्पर स्वाभाविक संबन्ध नहीं हो जाता। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इन पांचो यमों और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, इन पांच नियमोंको योग दर्शनने सुखका साधन कहा है। पर इनका पालन उस सांख्यके अनुसार भी होना चाहिये जो सांख्यकारिकाके व्याख्याता माठर, वाचस्पति मिश्र आदिके अनुसार निरीश्वरवादी है। सांख्य ही क्यों, जैन बौद्ध आदि अवैदिक मत भी यम नियमोंके अनुष्ठानपर बल देते हैं। योगदर्शनमें ईश्वरके साथ प्रतिपादन होनेके कारण यम, नियम और ईश्वरवादका अविच्छेद्य स्वाभाविक संबंध नहीं हो जाता। वेदान्तदर्शन वेदोंको प्रमाण मानता है। उसके अनुसार वर्णाश्रमकी व्यवस्था और यज्ञोंका अनुष्ठान धर्म है। संसारके कर्ता ईश्वरने ही वेदोंकी रचना की है। पर पूर्व मीमांसाके आचार्य कुमारिलभट्ट, प्रभाकर, और मंडनमिश्र वेद और यज्ञका प्रामाण्य मानते हुए ईश्वरका निषेध करते हैं। उनके अनुसार वेद भी नित्य हैं उनको किसी ने नहीं बनाया। वर्णाश्रम और यज्ञका प्रामाण्य, ईश्वरवादसे स्वाभाविक संबन्ध नहीं रखता। अनीश्वरवादका खंडन करते हुए कभी किसी नैयायिक अथवा वेदान्तवादीने अनीश्वरवादी मीमांसकोंपर वर्णाश्रम धर्म और ईश्वरवादका स्वाभाविक संबंध बताकर आक्षेप नहीं किया। अपरिचित लोग अवश्य अनीश्वर वर्णाश्रम धर्म सुनकर चौंकने लगते हैं। वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र आदिके अनुसार वैशेषिक दर्शनके मतमें परमाणु भी हैं और उनके संयोग विभाग द्वारा उत्पत्ति और लयका कर्ता परमेश्वर भी है, पर परमाणुवादका ईश्वरवादके साथ स्वाभाविक संबन्ध नहीं है। परमाणु मानें तो ईश्वरका मानना अनिवार्य नहीं हो जाता। यह सुनकर विद्वान भी चौंकेंगे। पर सांख्यकारिकाकी व्याख्या युक्ति दीपिकाके कर्ताके मतमें कणादका दर्शन अनीश्वरवादी है और उसमें ईश्वरका प्रवेश शैव दार्शनिकोंके प्रभावके कारण हुआ। हीगलके शुद्ध ज्ञानवादके साथ कथात्मक विचारका संबंध था। पर मार्क्सने उसको लेकर प्रकृतिवादकी व्याख्या की। कथात्मक विचारकी शैलीको लेनेपर शुद्ध ज्ञानवादका लेना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा। मैं समझता हूं मार्क्सने मूल्य, उसके निश्चय करनेके उपाय, सापेक्ष और निरपेक्ष, अतिरिक्त मूल्य आदि आर्थिक तत्त्वोंका जो स्वरूप प्रकट किया है उसका प्रधान अंश आत्मवादका विरोधी नहीं। इतना ही नहीं वह उसका अपरिहार्य परिणाम है। इसके लिये आत्मवादी प्रमाणों द्वारा आर्थिक वस्तुओंके स्वरूपपर विचार करनेकी आवश्यकता है। वर्ग पीडन, दरिद्रता, और बेकारीको लेनिन और स्टालिन धर्मका मूल्य कर रहे हैं। मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्रके कल्याणकारी धर्मके मूल रूपमें आत्माके उज्वल शुद्ध तत्त्वको प्रकाशित करनेके लिये प्रमाणोंपर विचार आवश्यक हो गया है। आत्मवादपर सदियोंसे वज्र प्रहार होते आये हैं। अब समाजवाद विज्ञानके अभूत पूर्व शस्त्र लेकर आत्माको राजनीति, समाज, इतिहास आदिके अणु अणुसे हटाना चाह रहा है। नाम नहीं रहने देना चाहता। इसलिये विचारकी ज्योति प्रदीप्त होनी चाहिये। इतना ध्यान रहे, इस विचारका विषय अभौतिक जीव आदिका प्रमाण सिद्ध होना या न होना नहीं है। विषय है, अतिरिक्त मूल्य आदिका आत्मवादके साथ संबन्ध। मार्क्स अभौतिक आत्मा आदिको न मानकर चले मैं मानकर चलूंगा।

समाजवाद मार्क्सीय ही नहीं मार्क्स ऐंगल्सीय है। इसके प्रधान तत्त्व दो प्रकारके हैं। पहले तत्त्व अर्थ संबंधी और दूसरे परिवार संबंधी हैं। अर्थ संबंधी तत्त्वोंका प्रतिपादन "मजूरी और पूंजी" (१८४९) "अर्थशास्त्रकी समालोचना" (१८५९) "पूंजी" का प्रथम खण्ड (१८६७) आदि ग्रन्थोंमें मार्क्सने किया है। दूसरेका निरूपण ऐंगल्सने "परिवार व्यक्तिगत संपत्ति और राज्यकी उत्पत्तिका मूल" आदि ग्रन्थोंमें किया है। इनमेंसे दूसरेका आत्मवादके साथ सर्वथा विरोध है। अर्थ परिवारका भी मूल है इसलिये पहले उसे लूंगा।

पूज्य बापूके अमूल्य पत्र

[भारतकी प्राचीनतम वैदिक अनुसन्धान संस्था 'स्वाध्यायमण्डल' के प्रति उस युगपुरुषका सम्बन्ध, भाव, सहानुभूति एवं ममत्व किस प्रकारका था, इसका स्वल्प परिचय इन पत्रोंद्वारा पाठकोंको मिल सकेगा।] सम्पादक

[१]

भाई सातवलेकरजी,

गी० श्लोकार्धसूची और अन्य पुस्तक शीघ्र भेजनेके लिये कृतार्थ हुआ हूं। जिस चर्खे× पर आठ घंटेमें २९००० गज सूत नीकलता है वह हाथकी पुनीयोंसे? उसका अंक क्या रहता है। इनामी चर्खेकी परीक्षामें यह भी होगा। खीसा चर्खा यदि संभव है तो मुझको एक भेज दीजिये।+

यरवडा आपका,
५-१-३१ मोहनदास

[२]

भाई श्री. सातवलेकरजी,

आप शायद जानते होंगे कि मेरे साथ यहां सरदार वल्लभभाई और महादेव हैं। सरदारकी इच्छा संस्कृतका परिचय कर लेनेकी है। महादेव उनको मदद करेंगे। कृपया आप अपनी पाठावली (१-२४) भेज दीजिये। आप कुशल होंगे हम तीनों कुशल हैं।

यरवडा मन्दिर आपका
१-७-३२ मोहनदास

[३]

भाई सातवलेकरजी,

आपका पत्र आज ही मिला। संस्कृत-पाठमाला पहले-ही मिल गई थी। पत्रकी राह देख रहा था। पाठमालाके लिये अनुग्रह मानुं? आपके तरफसे मुझको कितनी पुस्तकें मिल चुकी हैं। "पुरुषार्थ" इत्यादि आते ही हैं। आप जानकर खुश होंगे कि सरदारजीने दो भाग पूरे कर लिये हैं। तिसरा चल रहा हैं। जितने दोष देखनेमें आ रहे हैं उसकी नोंध हो रही है। सूचना देनेका निश्चय पत्र आनेके पहले ही हो चुका था! योतों पाठमालाकी सारी रचना बहुत अच्छी ही है, उसमें कोई संदेह नहीं है। पाठमालाकी उपयोगिता बढानेके लिये ही जो कुछ दोष हम लोगोंको प्रतीत होते हैं बताये जायेंगे।

मेरे हाथमें कुछ इतना बहुत दर्द नहीं है। एक प्रकारकी गति देनेसेही बांये हाथको कोहोनीमें दर्द होता है। यहांके सुप्रीने ही मुझको लाक्षादि तैल दिया था। उससे मालीश भी किया लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। बात यह है कि जब वायुदोषसे दर्द होता है तब तो इस तैलका असर होता है। कोहोनीकी हड्डीमें जो दर्द है उसका कारण वायु नहीं है। अब तक तो दाक्तर लोग बता रहे है कि उसका कारण उस भागको चर्खेके मार्फत निरंतर काममें लाया गया वही है। इस कारण मैंने चर्खे चलानेमें बांये हाथका उपयोग करीब एक महिनेसे छोड दिया है। उसमें भी कुछ लाभ हुआ है ऐसा नहीं कहा जाय। इस कारण अब ज्यादाह चिकित्सा होनेवाली है। कोई चिंताका कारण नहीं है। स्वास्थ्य ऐसे अच्छा ही रहता है।

विश्वरूपदर्शन योगके बारेमें जो आपने लिखा है वह सब यथार्थ है। तदपि मैंने जो उस अध्यायकी भूमिका

× यह चर्खा बंबईमें इस समय चल रहा है। श्री भास्करराव काले, शास्त्री हाल, ग्रांट रोड, मुंबई।

+ खीसा चर्खा छोटी पेटी जैसा था, वह भी महात्माजीको भेजा गया था।

लिखा है उसमें कोई फरक नहीं होता है। सारा जगतको जो मनुष्य वासुदेवरूप मानेगा वह विश्वरूपका दर्शन अवश्य करेगा। परन्तु रूप अपनी कल्पनाकी ही मूर्ति होगा। ख्रिस्ति धर्मको ईश्वररूप मानता हुआ अपनी कल्पनाके अनुकूल मूर्ति देखेगा जो जैसे भजता है वैसे ईश्वरको देखता है। हिंदु सभ्यतामें जो पैदा हुआ है और उसकी शिक्षा जिसने पाई है वह ग्यारहवा अध्याय पढते हुए थाकेगा नहीं और उसमें अगर भक्तिकी मात्रा होगी तो उसमें जैसा वर्णन है वैसा ही विराटरूपका दर्शन करेगा। परन्तु ऐसी कोई मूर्ति जगत्में उसकी कल्पनाके बाहर नहीं है। ब्रह्म, आत्मा, वासुदेव जो कुछ भी विशेषण उस शक्तिके लिए हम इस्तेमाल करे निराकार ही है। भक्तके लिये वह आकाररूप बनती है। यह उस शक्तिकी माया है। यही काव्य है। हम उसका निचोड एक ही खींच सकते हैं जो आपने खींचा है। डाकूमें भी इसको वासुदेवका रूप देखना होगा और हमारेमें यह शक्ति आ जायगी तो डाकू डाकूपन छोड देगा और जबतक हमारेमें यह शक्ति नहीं आई तबतक हमारा सब अभ्यास और सब ज्ञान निरर्थक ही है। आपने विश्वरूप दर्शनपर जो लिखा है उसके बारेमें उत्तर नहीं मांगा है। मैंने दिया है क्योंकि मैं भी वैसे विचारोंमें ग्रस्त रहता हूं। और आपके साथ पत्र द्वारा ऐसे वार्तालाप करनेसे मुझको आनन्द होता है।

अभयजीका "वैदिक विनय" मैंने पढ लिया। अब वैदिक मुनि हरिप्रसादजी कृत "स्वाध्याय-संहिता" पढ रहा हूं। लेकिन वैदिक मन्त्र पढनेमें मुझको बडी मुसीबत है। मेरा संस्कृत-ज्ञान तो आप जानते ही हैं, कनिष्ठ श्रेणीका है। वेदकी भाषाका तो नहींसा परिचय है। मैं इतना जानता हूं कि वैदिकमंत्रके विद्वान लोग बहुत अर्थ कर लेते हैं। सनातनी एक, आर्य-समाजी दूसरा। पश्चिमके लोग तीसरा। सनातनीओंमें भी भिन्नता पाता हूं। सब आर्य-समाजी एक अर्थ नहीं करते हैं। आपके बीचमें और वैद्यजीके बीचमें जो संवाद मैंने करवाया था, उसका तो स्मरण होगा ही। यह सब दृष्टिमें रखता हुआ मैं जब वैदिक मंत्र पढनेकी कोशीश करता हूं तो घबराहटमें पड जाता हूं। अपना निश्चय करनेकी कोई योग्यता नहीं पाता हूं। ईशोपनिषद् आजकल कंठ कर रहा हूं। मुझे ख्याल है कि शंकरने उसका एक अर्थ किया है, अरविंद बाबुने और किया है, आपका भी कुछ लिखा हुआ गत साल जब जेलमें था तब देखा था। उसमें कुछ और चीज है। अब मेरे पास एक गुजराती अनुवाद आ गया है, उसमें और हरिप्रसादजीके अनुवादमें भी और कुछ है। मैंने अपने लिये कुछ इस उपनिषद्का अर्थ बना लिया है। लेकिन संस्कृत भाषाका अल्पज्ञान होनेके कारण इस तरहसे अर्थ बना लेना धृष्टतासा लगता है। क्या कोई ऐसा पुस्तक है कि जिससे वैदिक व्याकरणका कुछ ज्ञान हो सके और जितने अर्थ भिन्न भिन्न विद्वानोंने अबतक किये हैं उसका संग्रह मिल सकें? तात्पर्य मेरे जैसा मनुष्य वैदिक मंत्रोंका अर्थका निश्चय करनेके लिये क्या करे? किसी संप्रदायवालोंपर मेरी ऐसी श्रद्धा नहीं है जिससे उनके अर्थको ही मैं वेद-वाक्य मान लूं। सद्भाग्य या दुर्भाग्यवशात् संस्कृतका इतना ज्ञान भी रखता हूं। जिससे मेरे सामने जब दो चार अर्थ आ जाते हैं तब मैं अपनी पसंदगी कर लूं। लेकिन इस जैलमें मैं इतनी बडी लायब्रेरी बनाना नहीं चाहता। न इतना गहरा अभ्यासमें भी पडना चाहता हूं। आत्मसंतोषके लिये गीताजी काफी है। परंतु वेदोंमें चंचुपात करना मुझको प्रिय है। इसलिये कुछ सूचना आप दे सकते हैं तो देनेकी कृपा करें। हम सब अच्छे हैं।

यरवडा
१९-७-३२

आपका
मोहनदास

[४]

भाई सातवलेकरजी,

सरदार संस्कृत सीख रहे हैं जानकर दुसरोंने भी सीखनेका विचार किया हैं। वे सब दुसरे स्थान पर रहते हैं। उनके लिये एक और सेट भेजनेकी कृपा करें। मैं नहीं जानता आपकी संस्था पुस्तकोंका दान कहां तक कर सकती है। यदि आवश्यक समझा जाय तो मूल्य भेजनेका प्रबंध करूंगा।

ईशोपनिषदादि ग्रंथ मिल गये थे। मैं दुसरे खतकी प्रतीक्षा कर रहा था इतनेमें खत लिखनेका अवसर आया। ईशोपनिषद् ध्यानसे पढ रहा हूं। कंठ कर लिया है। दुसरे ग्रंथ भी पढुंगा।

आजकल गंगाका वेदांक पढ रहा हू। इसमें साहित्य-

चार्य महेन्द्रमिश्रने जो कुछ लिखा है उसमेंसे एक पृष्ठ भेजता हूं। जिस जगह लाल पेन्सिल लगाई है उसे देखे और कुछ प्रकाश डालें। ऐसी और बातें भी इस वेदांकमें देख रहा हूं। परंतु मैं ज्यादा तकलीफ देना नहीं चाहता हूं।

आपका
९ ८/३२ मोहनदास

[५]

भाई सातवळेकर

आपको तीन पत्र लिखे उनका उत्तर न होनेसे कुछ चिंता होती है।

एकमें संस्कृत शिक्षिका की दुसरी सेट भेजनेका भी लिखा है।

आपका
२४ ८/३२ मोहनदास

[६]

यरवडा मंदिर
२३ ९/३२

प्रिय सातवळेकरजी,

आपका कृपापत्र पहुंचा। वह मैंने बापूजीको नहीं दिखाया। प्रत्येक श्वासोच्छ्वास ईश्वरप्रेरित माननेवालेको यह पंचागकी खबर देनेसे क्या अधिक लाभ हो सकता है। आपको लिखे हुए अगले पत्रोंकी उन्होंने बहुत प्रतीक्षा की थी।

मैं अपनी चिंता कमी होनेके इरादेसे आपसे पूछ सकता हूं सही कि अगर प्रायोपवेशनका जिक्र पंचागमें है तो उसकी पूर्णाहुतिका भी कहीं जिक्र है सही?

आपका कृपाभिलाषी
महादेव देसाई

[७]

यरवडा
१६-१०-३२

भाई सातवळेकरजी,

मैं प्रतीक्षा कर ही रहा था। इतनेमें आपका खत मिल गया। कुछ आपत्तिकाही डर मैंने प्रकट किया था और वही कारण आपके पत्रसे खुल जाता है। हम सब आशा करते हैं कि आपके पुत्रको शीघ्रतासे संपूर्ण शक्ति आ जायगी और वैसे ही आपको। दांतके बारेमें मैंने बहुत देखा है कि दांतके वैद्य लोग काफी गलतियां कर लेते हैं और दर्दीओंको कष्ट भोगना पडता है। आपकी अशक्त अवस्थामें भी पं. महेन्द्रमिश्रके लेखका विस्तृत उत्तर दिया है इस लिये आपको धन्यवाद। पत्रको मैं संग्रहमें रखुंगा और उसका ध्यान पूर्वक मनन करूंगा। सरदारजी का संस्कृत अभ्यास भली भांति आगे चल रहा है। और जो दुसरी "सेट" आ गई उससे बहुत विद्यार्थी लाभ उठा रहे हैं।

आपका
मोहनदास

ભાઈ સાતવળેકર,
આપકા પત્ર મિલા.
વિવાહકે પૂર્વ સ્ત્રી પુરુષ
કા વિષય ભોગ, નીતિકા,
और શરીરકા, નાશ કરતા હૈ।
જો અખબાર ઇસ નીતિકા
પ્રચાર કરતે હૈં વે સ્વાર્થ
પૂર્વક અથવા અજ્ઞાન
પૂર્વક સમાજકો હાનિ
[illegible] હૈં. યુવક ઔર
યુવતીઓંકો [illegible]
યહ વિનય હૈ, [illegible]
[illegible]
[illegible]

આપકા
૯ ૧/૩૪ મોહનદાસ

पूज्य बापूजीका हस्ताक्षर

[८]

यरवडा मन्दिर
१३-११-३१

भाई सातवळेकर

इस अस्पृश्यता निवारणके प्रश्नमें आप क्या हिस्सा ले रहें हैं ? स्वनिर्मित सनातनी हमला कर रहे हैं उनके सामने हिंदु धर्मकी शुद्धि व उन्नति चाहनेवालोंका धर्म्य-संगठन होनेकी आवश्यकता है। यहां जैसा संगठन आजकल होता है वैसा संगठन अभिप्रेत नहीं है लेकिन सुधारकोंके विचारकी विवेकपूर्ण घोषणा एक सूरमें होनी चाहिये। आलस्य अथवा संकोचसे कोई सुधारक बैठे न रहें ऐसा मैं चाहता हूं। इस बारेमें जो उचित समझा जाय वह करें।

आपका
मोहनदास

[९]

यरवडा मन्दिर
१७-११-३३

भाई सातवळेकर,

आपने तो मुझको बडा प्रोत्साहन भेजा है। लेकिन ऐसा तो आपने नहीं माना था कि मैं आपकी अस्पृश्यता निवारणके बारेमें भूत प्रवृत्तिको नहीं जानता था ? यों तो मैंने आपका निबन्ध भी पढ लिया था। मुझे तो इतनाही जानना था कि इस वख्त इस प्रचण्ड आंदोलनमें आपका हिस्सा क्या होनेवाला है। इसका पत्ता मुझको अच्छीतरह मिल गया। श्रीमंत महाराज और राणीसाहेबा दोनोंको बहुत बहुत धन्यवाद दीजिये। आपने जो वहांके कार्यका विवरण दिया है उसका मैं यथा समय सदुपयोग करूंगा।

आपका
मोहनदास

अस्पृश्यता संबंधीं पुस्तक भेज दीदिये। इस दफा होसरीहि शास्त्री क्या बताते हैं ? पंचागकी एक प्रत चाहिये कहांसे मिल सकती है ?

[१०]

भाई सातवळेकर,

स्व. राजेन्द्रलाल मित्रकी एक पुस्तक तुम्हारे अवलोकनके लिये भेजता हूं पढनेके बाद मुझे वापिस कीजिये। तुम्हारी टीकाके साथ उसे मैं पढूंगा। एक बात विचारणीय है जो अर्थ वे निकालते हैं वही अर्थ वेदाभ्यासी हिन्दु निकालकर भी मेधादि करते थे उसमें तो कोई संदेह नहीं होगा। यदि ऐसा ही हुआ है तो ऐसा अर्थ निकालनेका कोई ऐतिहासिक या दूसरा कारण है क्या ?

$३०\frac{१}{३३}$

आपका
मोहनदासके
वं. मा.

[११]

भाई सातवळेकर,

आपका पत्र मिला। हरिजन सेवक मंडळकी ओरसे एक हिंदी साप्ताहिक दिल्लीसे निकलेगा। तदुपरांत और कुछ निकालनेकी आवश्यकता रहती है ? अगर है तो क्यों ? अथवा आप मराठीमें निकालनेकी बात तो नहीं कर रहे हैं ? लक्ष्मणशास्त्री मिलने पर उनसे बात करूंगा।

$३\frac{२}{३३}$

आपका
मोहनदास

[१२]

यरवडा सेंट्रल प्रिझन,
१८-२-३३

प्रिय सातवळेकरजी,

"हरिजन" आपको भेजा जा रहा है। आपके लिये एक प्रति और दो प्रतियां श्रीमंत साहेब और महाराणी साहेबाके लिये। क्या वे दोनों ग्राहक होनेकी कृपा करेंगे ? हम तो आशा करते हैं कि वे और भी थोडी प्रतीयां लेकें और अपने स्टेटमें बाटें। औंधमें जो हरिजन-कार्य हुआ है उसके बारेमें आपकी भेजी हुई हकीकतका हरिजनमें उपयोग करना चाहता हूं। आप कुछ और खबर बढाना चाहते हैं ?

आपका
महादेव देसाई

[१३]

भाई सातवळेकर,

आजकलमें मैं लक्ष्मणशास्त्रीसे मिलुंगा ऐसी आशामें मैंने आपके पो. कार्डका उत्तर नहीं भेजा। अब मालुम नहीं मैं कब मिलुंगा। मिलनेपर ज्यादा लिखुंगा। मैं

जानता हूं कि हिन्दी या इंग्रेजी महाराष्ट्र जनताके लिये निरर्थक है।

२१-२-३३ आपका
मोहनदास

[१४]

भाई सातवळेकर,

आपका पत्र मिला। मुझको तो गोमांस बारेमें जो उत्तर दिया है वह अच्छा लगता है। राजेंद्रलाल मित्र बहुत बडे विद्वान थे। उनका मृत्यु बहुत वर्षोंके पहले हुआ। मुझको तो किसी सज्जनने पुस्तिका ऐसे ही भेज दी।

यद्यपि कोई अखबार मराठीमें न निकले तो भी प्रचार-कार्यका सर्वथा त्याग भी नहीं होना चाहिये। सकाळादि अखबारमें अस्पृश्यता निवारणका समर्थन तो होता ही है न?

३१-३-३३ आपका
मोहनदास

[१५]

भाई सातवळेकर,

आपका पत्र मिला। विवाहके पूर्व स्त्री पुरुषका विषय भोग, नीतिका और शरीरका, नाश करता है। जो अखबार इस नीतिका प्रचार करते हैं वे ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक समाजके शत्रु बनते हैं। युवक और युवतीओंको मेरा तो यह विनय है, इस स्वच्छंदसे अपनेको और देशको बडी हानि करेंगे।

क्या दा० केलकर वहां है नहीं तो कहां है, क्या करते हैं।

९-१-३४ आपका
मो. क. गांधी

[१६]

भाई सातवळेकर

आपका पत्र मिला। दिल्लीसे देवदासका पत्र है उससे पता चलता है कि केलकर दिल्लीमें हैं और अच्छे है।

कुरुंदवाडके यज्ञकी कथा दुःखद है। उद्योगसंघका सब हाल हरिजन और हरिजनसेवकमें आता है। यदि नहीं मिलता है तो मैं भिजवा दुं। संघके सदस्य और एजण्ट बनोगे?

रेशमके धंदेका संघके कार्यक्रममें त्याग नहीं है। इसे चर्खासंघके मार्फत किया जाता है।

वर्धा आपका
२५-१-३५ मो. क. गांधी

[१७]

भाई सातवळेकर,

प्रेमवश होकर जो पत्र मुझे लिखा है उसके लिये मैं आभारी हूं। मेरा ख्याल है कि वह सांपमें विषही नहीं था। पाचळेगांवकरजीने भी कहा था बहुत विषैला नहीं है। कटवानेकी कोशीश करते हुए भी किसीको नहीं काटा, तो भी तुम्हारी चेतवणी बिलकुल योग्य है।

११-८-३५ मो. क. गांधी

[१८]

मगनवाडी, वर्धा,
१६-६-३६

प्रिय सातवळेकरजी,

कृपा पत्र मिल गया था। आप जो कहते हैं सो ठीक है। बापूजी जो वचन कहते हैं वह इस भावार्थके होने चाहिये। प्रथम पुत्र ही धर्मज है बाकीके सब कामज है। विषय-तृप्तिके लिये संभोग पाप है। संतानोत्पत्तिके लिये संभोग धर्म्य है इ०। संतान प्रतिबंधके कुछ वाक्य छान्दोग्य उपनिषद्में है और आयुर्वेदमें कुछ औषीधयां हैं तो सही। इस बारेमें आपका क्या कहना है?

आप जो समाजवादीओंका जिक्र कर रहे हैं उनमें पं० जवाहरलाल नहीं है। परंतु खादी-प्रचारको पं० जवाहरलालके उद्गारोंसे काफी धक्का पहुंचा है यह ठीक बात है।

संपत्तिवान् और निःसंपन्नका विग्रह कराना इन लोगोंका ध्येय है इसलिये संपत्तिवान् इन लोगोंसे भडक रहे हैं और सरकारका साथ दे रहे हैं सो ठीक है। काळके गर्भमें क्या है बताना मुश्किल है परंतु बापुजीका वह विग्रह रोक-

नेका बड़ा प्रयत्न है। उनकी सारी तपश्चर्या इसी उद्देश्य है। इससे अधिक क्या लिखूं ?

आप कुशलसे होंगे। औंधके महाराजाके पश्चिम प्रवासके बारेमें हिंदु अखबारमें आया हुआ कुछ भेज रहा हूं। शायद आपने न देखा हो।

आपका सेवक,
महादेव देसाई

[१९]

भाई सातवळेकर,

कैसा सुंदर खत तुमको भेजा है। चलती ट्रेन पर यह लिख रहा हूं। राजपुत्र नवेम्बरमें अवश्य आवें। आजकल तो मैं सरहदी सुबेमें हूंगा।

पेशावर ५-१०-३८

आपका
मो. क. गांधी

क्या हमारा जीवन और क्या हमारी आत्मकथा

(लेखक- श्री० नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ, आचार्य, महाविद्यालय, ज्वालापुर)
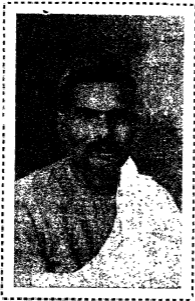
स्वप्नेऽपि यद्संभाव्यं । यत्र भग्नाः मनोरथाः ॥
हेलया तद्विदधता । नासाध्यं विद्यते विधेः ॥
(राजतरङ्गिणी, सप्तमतरंग)

विधाताका विधान देखिए कहाँ पिताजीकी इच्छा थी कि मैं बडा इंजीनियर बनूँ अथवा डॉक्टर बनूँ पर बन गया कोरा भिक्षु, हमारा जीवन भयङ्कर निराशाओंमेंसे आशाओंके किरणजाल देखनेका, अपरिमित-विपत्ति परम्पराओं मैंसे अनवरत निकलते रहनेका, सुखी होते हुए भी जन्मभर दरिद्रनारायणके प्रतिनिधि बन रहनेका स्वदेश (भारत) में रहते हुए भी स्वदेशमें ही प्रवासी-जीवन व्यतीत करते रहनेका, पास कुछ न रहते हुए भी, सबकुछ रहनेका-सा जीवन व्यतीत करनेका, भग्न मनोरथ रहते हुए भी सिद्ध मनोरथकासा, स्वप्नमें भी जो असंभवसा था, ऐसे विचित्र विचित्र दृश्य देखते रहनेका, प्रारम्भमें अत्यन्त सुखी, १४ वें वर्षसे दुःखी, १७ वें वर्षसे अत्यन्त दुःखी, फिर अबतक मिश्रित, कभी स्पर्द्धालुओंका, कभी ईर्ष्यालुओंका, कभी शान्त, कभी बडों बडोंसे टक्कर लेनेका और इस विकट स्थितिमेंसे पार पडनेका जीवन रहा है।

अपने इस ७० वर्षके जीवनमें मैंने यह भली भांति अनुभव कर लिया है कि मनुष्य दृढ संकल्प रहे तो उसकी विपत्ति परम्परा भी अनुकूल रूप धारण कर लेती है। गुरुजनोंकी कृपा रहे तो वे मनुष्यको कुछका कुछ बना देती हैं, मनुष्यका स्वभाव मधुर हो तो विदेश भी उसके लिए स्वदेश बन जाता है।

भगवान रामचन्द्रको १४ वर्षका ही वनवास हुआ था, पाण्डवोंको १२ वर्षका वनवास और एक वर्षका अज्ञातवास मिला था, किन्तु मुझे अपने देशसे निधिने जो धक्का दिया तो इस धक्केका भुगतते भुगतते आज ५४ वर्षसे अधिक काल होता है। भगवान राम तथा प्रतापी पाण्डव राजपुरुष थे। कवियोंने उनके महाकाव्य बना डाले। यदि मैं कहीं किसी राजकुलका व्यक्ति होता और जैसी जैसी विपदाओंमेंसे निकला हूं इन विपदाओंका भी साथ होता तो कोई कवि देवायन काव्य भी बना डालता इसमें सन्देह नहीं। पर यह कैसे होता। अच्छे कुलका जन्म रहते हुए भी हमारा कुल राजकुल नहीं था। जन्मपत्रीमें कुछ और ही लिखा हुआ था। आर्यसमाजके प्रवर्तक जन्मपत्रीको नहीं मानते। आर्यसमाज फलित ज्योतिषको नहीं मानता तथापि न जाने क्यों और किस प्रकार मेरे ज्योतिषाचार्यकी बनायी हुई जन्मपत्रीमेंसे चार बातें अक्षरशः सत्य निकलीं—

१- यह लडका प्रवासी रहेगा जन्मभर।

२- यह लडका विद्वान यशस्वी निकलेगा।

३- यह लडका निर्धनी रहेगा, इसके पास धन प्रचुरमात्रा- में आता रहेगा किन्तु रहेगा दरिद्रनारायणका प्रतिनिधि ही। इसका कोई काम धनाभावके कारण न रुकेगा ।

४- इसका सार्वजनिक जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहेगा किन्तु पार हो जायगा।

जब मेरा ज्योतिषाचार्य मेरी जन्मपत्री लिखने लगा तब उसका हाथ रुक गया, पिताजीने. पूछा क्या बात है । ज्योतिषीने कहा कि यह बालक न आपके देशका (दक्षिणका) रहेगा न आपके कामका निकलेगा । इसका तो संकट परम्परामय प्रवासी जीवन है । पिताजीने कहा जो ठीक निकलता है,- लिखो, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ । मेरी नाराजीकी पर्वाह न कीजिए । माताजी जो छुपकर यह सब कुछ सुन रही थीं, रो पडी – रोनेसे क्या हो सकता था । मैं तो दक्षिणापथको छोडकर उत्तरापथका प्रवासी होनेवाला ही था । पिताजीने ज्योतिषीको १००) रु. दिये बतलाते हैं । - छुट्टी हुई—

हमारे प्राचीन पूर्वज

हमारे प्राचीन पूर्वज श्री अण्णाजी तथा श्री त्र्यंबोजी (भाई-भाई) रायचुरके पास हचोली नामक एक ग्रामके अच्छे संपन्न व्यक्ति थे । रायचुर जी. आई. पी. रेलवेका बडा जंकशन है । रायचुर निजाम राज्यका एक प्रमुख जिला है । हमारे पूर्वज निजामशाहीमें किसी अच्छे ओहदे. पर रहे और उस समय उनको राजदरबारकी ओरसे सम्मानार्थ कायमखानी उपाधि मिली थी -जो हमारे पितामह तक चलती रही । पीछे हमारे पिताजीने इस उपाधिको लिखना छोड दिया । होगी यह उपाधि कोई अंगरेजोंकी " रायबहादुर " उपाधिकी- सी ।

हमारे प्रपितामह

श्री. त्र्यंबकोजी

पितामह

श्री. राघवेन्द्रराव

हमारे ताऊ	पिता
रॉक श्री हणमंतराव	श्री श्रीनिवासराव

हमारे पितामह श्री राघवेन्द्रराव भी निजामशाहीमें अच्छे प्रतिष्ठित अधिकारी रहे । हमारे ताऊ हणमन्तराव निजामशाहीमें, सेनामें, कैप्टन रॉकके नीचे फौजी अफसर थे इसीलिये रॉक हणमन्तराव नामसे प्रसिद्ध थे । हमारे पिताजी राव साहिब श्री निवासराव पढ लिखकर पहिले बम्बईमें पुलिसकमिशनर जॉनसनके नीचे पुलिस अधिकारी रहे । कुछ काल डिटेक्टिव भी रहे फिर डाकुओंके डिटेक्टिव रहे । इनकी ड्यूटी प्रायः बम्बईसे अजमेर तक रहती थी । पीछे हमारे ताऊके अत्याग्रहके कारण अंगरेजी नौकरी छोडकर निजामशाहीमें चले गये । हेड अकौण्टण्ट रहे, तहसीलदार रहे, मैजिस्ट्रेट रहे, अन्तमें पेन्शन लेकर तुलजापुरमें तुलजाभवानी मन्दिर इस्टेटके मैनेजर रहे; वहीं १९१२ में अकस्मात् उनका देहावसान हुआ । सायंकालका भोजन करके लेटे ही थे कि अकस्मात् उलटी हुई । एक क्षणमें प्राणान्त हो गया । संभव है किसीने विष दिया हो पर सरकारी जाँच कहती है कि विष नहीं दिया, स्मशान— यात्रामें दशसहस्रजन समुदाय था ।

अजमेरमें पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिरसे उनका परिचय हुआ । तभीसे पिताजी आर्य विचारके बने । फिर इनका विचार हुआ कि अपने लडकोंको (हमको) डी. ए. वी. कॉलेज लाहोरमें पढाया जाय । बस यहींसे मेरे घरसे निकलनेकी भूमिका बँधी । उन दिनों डी. ए. वी कॉलेज की आर्य संसारमें बडी धूम थी । महात्मा हंसराजके डी. ए वी. कॉलेजके लिए जीवनदानकी सर्वतोमुखी चर्चा थी । वे आर्य समाजके सतयुगी दिन थे ।

मेरी बाल्यावस्था

मेरा जन्म दक्षिणका हैदराबाद राज्यमें वाडी और हैदराबादकी लाइन पर यह स्थान है । मेरी बाल्यावस्थामें शिक्षा (७ वर्षका था जब) यहीं हुई । फिर उस्मानाबादमें हुई । यहाँ मैं मराठी तीसरी क्लासतक पढा । फिर भाइयोंके साथ पूनेमें, शनिवार पेठमें अंकलीकरके बाडेमें रहने लगा । शिक्षादीक्षाके सुभीतेके कारण हम लोगोंको पूनेमें रक्खा गया । यहाँ मैं पहले म्युनिसिपल स्कूल नं. ३ में पढता रहा । फिर पूनेके प्रसिद्ध विद्यालय नूतन मराठी विद्यालयमें पढने लगा । यहाँ मैंने मराठीकी छटवें श्रेणी तथा इंग्रेजीकी पाँचवी श्रेणी पास की । अब यह कॉलेज

रूपमें है और सर परशुराम भाऊ कॉलेजके रूपमें भव्य भवनोंके साथ भव्य रूपमें दिखलायी पड़ रहा है।

१८९४

इस समय मेरी आयु १३॥ वर्षकी थी। पिताजीने एकदम हमको लाहौर भेजनेकी ठानी। नवंबरका समय था, मेरे स्वर्गीय बड़े भाई भीमराव, छोटाभाई त्र्यंबकराव और मैं, और पिताजीके स्व० परममित्र पातूर (अकोला-बरार) के गोविंदसिंह मनसबदार सबके सब सोलापुर स्टेशन पर चढ़े, बम्बई आये, तीन दिन रहे। वहाँ पिताजीका बड़ा स्वागत हुआ, व्याख्यान भी हुआ, फिर बी. बी. सी आईसे अहमदाबाद आये, वहाँसे आर. एम्. आरसे अजमेर आये, वहाँ भी पिताजीका व्याख्यान और स्वागत हुआ। सबको कौतुक हुआ कि पिताजी अपने लड़कोंको डी. ए. वी. कॉलेजमें छोड़ने जा रहे हैं। पर उस समय पंजाबमें मांस पार्टी और घासपार्टी दो दल हो गये थे। लोगोंने पिताजीको समझाया कि मांसपार्टीमें लड़कोंको भेजना ठीक नहीं है। जयपुर देखकर लाहौर पहुँचे, पिताजी उधर वच्छोवालीमें महात्मा मन्शीरामजीके पार्टीवालोंके साथ- डी ए वी. कॉलेजकी बात छूट गयी। हम प्रविष्ट कराये गये मास्टर दुर्गाप्रसादजीके दयानन्द हाईस्कूलमें। यहीं हमने मिडिल-पास किया (१८९६) एण्ट्रेंस पास किया (१८९८) फिर सहसा समाचार आ गया कि जिसमें हमारे लिए दशसहस्र रु. जमा किया गया था और जिसके व्याजसे (लगभग २८४) रु. या कितने स्मरण नहीं। हमारा मासिक खर्च चलता था, वह बैंक डूब गया।

फिर खबर आयी कि पिताजी दौरे पर थे, घरमें बड़ा भारी चोरी हो गयी और लगभग बीस सहस्रकी हानि हो गई। पिताजीने लिख दिया कि सब भाई देश वापस आओ, हम खर्च नहीं दे सकते। दो भाई तो देश वापस गये, पर मैं नहीं गया, मैंने स्वावलम्बनकी बात सोची। मैं यूइंग मिशन कॉलेजके प्रिन्सिपल वेरटी एम्. ए. के पास गया। उनको सब विपत्ति सुनायी। उन्होंने फीस न लेने तथा। पुस्तकोंके व्यय देनेका वायदा किया। जब हमारे पुराने मास्टरों ने यह सुना कि मैं मिशन कॉलेजमें जा रहा हूँ तब उन्होंने मेरा बड़ा विरोध किया। आर्य विद्यार्थी आश्रमके व्यवस्थापक स्व. श्री. मास्टर तुलारामजीने कहा कि मिशन कॉलेजमें जाना ठीक नहीं है। स्व. मास्टर आत्मारामने भी जोर लगाया। बस मैं मिशन कॉलेजसे भी रह गया।

अब आर्योंके कहने-सुननेसे मैं महात्मा हंसराजजी प्रिन्सिपल डी- ए. वी. कॉलेजके पास गया। यूनीयन एकेडेमीके हेडमास्टर श्री. रजनीकान्त मुकर्जी एम्. ए. ने मुझे एक सिफारशी पत्र भी दिया था। क्योंकि मैंने एण्ट्रन्स यूनियन एकेडेमीसे ही पास किया था। यह ब्रह्मसमाजी सरदार दयालसिंहका स्कूल था। दयानन्द हाईस्कूलको छोड़कर मैं इसी स्कूलमें आ गया था। महात्मा हंसराजने कुछ सूखासा ही उत्तर दिया था। मैं तो चहुँ ओरसे निराश हो गया। हमारे पिताजी और ताऊ हणमन्तरावजीका हैदराबादका मकान और कुछ रूपये पैसेपर झगड़ा हो गया था। तो भी पिताजीको पूछे विना ही मैंने ताऊजीको पत्र लिखा। उन्होंने सहायता देना प्रारम्भ किया, जब पिताजीको पता चला, तब वे मुझसे अत्यन्त रुष्ट हुए। विवश होकर यह मार्ग भी बन्द हो गया। पिताजी चाहते थे कि मैं देश लौट जाऊं पर मैं गया ही नहीं, इधर ही रह गया। तबसे इधर हो हूँ। सोचा कि मास्टर तोलाराम भोजनदेही देंगे शेष कहीं प्रबन्ध कर लेंगे। मनुष्य जैसा चाहता है वैसा ही होता चले तो ईश्वरको कौन माने और फिर सिर पर ईश्वरकी आवश्यकता ही क्या है। केवल इतना ही लिखना चाहता हूँ कि प्राईवेट रूपमें एफ. ए. की तैयारी होनेपर भी परीक्षा न दे सका इतने विघ्न आये, इतने विघ्न आये कि पूछिए हो नहीं, उनका न लिखना ही अच्छा, लिखनेसे लाभ ही क्या है। मेरी दशा तो मृच्छकटि चारुदत्तकीसी हो गयी, जो यह कहता है—

> सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।
> धनान्धकारेष्विव दीप दर्शनम्॥
> सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां।
> धृतः शरीरेण मृतः जीवति॥

बस शरीर तो था, चलता-फिरता भी था, पर शरीरमें प्राण नहीं थे। बस पूछिए नहीं। कैसे हुआ क्या हुआ १९९८ से विपत्ति ही विपत्ति रही। अंग्रेजी छूटनेका बड़ा दुःख रहा पर पीछे सुदीर्घ तपश्चर्याके पश्चात् संस्कृत साहित्यका जो अक्षरय भण्डार मिला उसने सब दुःख भुला दिये। १९०३ में पञ्जाबकी शास्त्रीका डिप्लोमा लिया १९०६ में वेदतीर्थ हुआ,

बंगालमें वेदकी परीक्षामें मैं अकेला ही था। इस बीचमें मैं कई घटनाओंको छोडकर यह लिखना चाहता हूँ कि शास्त्री परीक्षा पास करनेके पश्चात् मैं सिकन्दराबादमें गुरुकुलका मुख्याधिष्ठाता रहा, १९०५–१९०६ कलकत्तेमें स्व. आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी फेलो एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल के पास वैदिक साहित्यका अध्ययन किया। १९०७-८ गुरुकुलकांगडामें निरुक्ताध्यापक रहा। १९०८-९ गुरुकुल फर्रुखाबादका आचार्य रहा, फिर यह गुरुकुल वृन्दावन चला गया और मैं महाविद्यालय चला आया और तबसे अबतक किसी न किसी रूपमें सम्बन्ध चला ही जा रहा है। महाविद्यालयका किस्सा बडा लम्बा है और अभी उसके लिखनेकी इतनी आवश्यकता भी नहीं है। हाँ महाविद्यालयके महाभारसे महामुक्ति मिली यही सन्तोषका विषय है। महाविद्यालयमें आनेके पश्चात् एक बार गुरुवर आचार्य सत्यव्रत सामश्रमीका कलकत्तेसे पत्र आया था कि मैं अब कलकत्ता विश्व विद्यालयकी नौकरी छोड रहा हूँ, तुम अब मेरे स्थानपर आजाओ। गुरुजी वहाँ वेदके प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। वाईस चांसलर श्री आशुतोष मुकर्जीका भी पत्र हमारे पास आया था, किन्तु महाविद्यालयके अधिकारियोंने जाने नहीं दिया। यह बात है १९०८-१९०९ की। फिर उस स्थानपर इटावाके स्वर्गीय प० भीमसेनशर्मा गये थे।

उधर १९१६ई–लखनऊ कांग्रेससे ही हमारा रुख कांग्रेसकी ओर हुआ था। वैसे तो हमारे राजनैतिक गुरु स्व. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ही रहे हैं। पूनेसे ही हम उनके संपर्कमें आये थे। जब तक पूनेमें रहे वे ही हमारी देखभाल करते रहे थे, फिर वे १९०५में कलकत्तेमें ही मिले फिर लखनऊमें फिर अमृतसरमें। हम १९१९में देहरे जिलेमें साक्षात् राजनीतिमें पडे। ग्यारह वर्ष ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटीके मेंबर रहे। उत्तर प्रदेश प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके भी वर्षों मेंबर रहे। १९२१, १९३०, १९३२, १९३८, १९४०, १९४२ में राजनैतिक काण्डोंमें कृष्ण मन्दिरमें रहनेका भी सौभाग्य मिला है। बडे बडे राष्ट्र पुरुषोंके साथ काम करने, रहनेका सौभाग्य मिला है।

चित्त अत्यन्त प्रसन्न है कि अपने जीतेजी भारतकी पूर्ण स्वतन्त्रताके दर्शन मिले। यही एक बात सफल जन्मकी द्योतक है।

लोकमान्य तिलकके पश्चात् हम सर्वथा महात्मा गान्धीके अनुयायी रहे। कहाँ लोकमान्यकी "ये यथा मां प्रपद्यन्ते" की नीति और कहाँ महात्मा गान्धीका "अहिंसात्मक प्रतीकार"!

हम ऋग्वेदी ब्राह्मण हैं, गोत्र है हमारा श्रीवत्स, हमारे पञ्चप्रवर हैं भार्गव, और्व, च्यवन, पराशर और जामदग्न्य।

व्याकरणगुरु– स्व. श्री. आचार्य गंगादत्तशास्त्री
(स्वा. १०८ शुद्ध बोधतीर्थ)

दर्शनगुरु– स्व. श्री. नारायणमिश्र (कुंढा-नगर भरतपुर)

साहित्यगुरु– महामहोपाध्याय स्व श्री रघुपति शास्त्री (ग्वालेर-लश्कर)

काव्यादर्श, रसगंगाधर तथा नव्यन्यायके गुरु महामहोपाध्याय स्व. अम्बादास शास्त्री. (काशी)

वेदगुरु — स्व आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी (कलकत्ता) अन्य गुरु जिनसे हम लाभान्वित हुए, जिनके चरणोंमें रहने तथा सेवा–शुश्रूषा करनेका सौभाग्य मिला

भाष्याचार्य श्री हरनामदत्तजी (चूरू-राजपूताना) षड्-दर्शनाचार्य गुरुवर काशीनाथशास्त्रीजी (बलिया-उत्तरप्रदेश) श्री गुरुजीको हम ही काशीसे कांगडी गुरुकुलमें लाये थे। क्योंकि ये हमारे "गुरूणां गुरुः" थे।

अब हमारे सभी गुरु स्वर्गत हैं। इन्हीं गुरुजनोंने हमको आधे मनुष्य (नर) आधे पशु (सिंह) अर्थात् नरसिंहराव (जन्मनाम) से नरदेव बनाया है। गुरुजनोंकी कृपासे ही हमारा उद्धार हुआ है। हम जन्मजन्मान्तर तक इनके ऋणी रहेंगे।

अंगरेज़ी गुरु

अंगरेजीमें स्व. श्री मास्टर दुर्गाप्रसाद, (दयानन्द हाईस्कूल लाहोर) श्री रजनीकान्त मुकर्जी एम्. ए. हेडमास्टर यूनियन एकेडेमी लाहोर, श्री. घोष श्री. सेन, श्री. कृपाराम बी. ए. आदिके ऋणी हैं। ये सब यूनियन एकेडेमी में ही पढाते थे।

हमारे गुरुओंमें महाराष्ट्र, बंगाल, उत्तरप्रदेश पंजाब आदि देशके गुरु रहे हैं जिनका प्रभाव हमारे जीवनपर पडा है। इसीलिए हम एक देशी होनेपरभी भारतव्यापी कार्यक्षेत्र बना सके हैं।

आर्य समाजमें

वस्तुतः हमारा जीवन ही आर्य समाजसे प्रारम्भ हुआ और आर्यसमाजमें गया और हमको एक हाथमें आर्यसमाज और दूसरे हाथसे राजनीति संभालनी पड़ी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संपादक सम्मेलन, पत्रकार सम्मेलन आदि आदि-से भी हमारा घनिष्ट सम्बन्ध रहा। आर्यसमाजमें अधिकतर सम्बन्ध शिक्षाक्षेत्रसे रहा।

हमने अपने मनोरञ्जनार्थ, स्वान्तः सुखाय अपनी लम्बी आत्मगाथा लिख डाली है। प्रकाशमें आती है कि नहीं आती है, न जाने। ग्रन्थोंमें हमने आचार्य स्वामी शुद्धबोध तीर्थजीकी जीवनी लिखी है "शुद्धबोध चरित्र" -- (जेलमें) गीताविमर्श, ऋग्वेदालोचन लिखा था। पत्रपुष्प (हमारी लेखमाला प्रथम भाग) प्रकाशित हो चुका है। द्वितीय भाग- तैयार है। आर्य समाजका इतिहास भाग १ छपा था, भाग २ छपा था ये दोनों रहे नहीं। तृतीय भाग हम जेल गये थे तब कोई उड़ा ले गया था। एक नया याज्ञवल्क्यचरित लिखकर श्री पं. रामदत्त शुक्ल एम् ए मन्त्री आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर प्रदेशको दे दिया है। और भी छोटेमोटे ट्रेक्ट लिखे थे।

सम्पादन कार्यमें हम भारतोदय (महाविद्यालयके मुखपत्र) के वर्षों सम्पादक रहे। शङ्कर (साप्ताहिक–मासिक) मुरादाबाद (रोहिलखण्ड) के भी सम्पादक रहे। देवदूत (देहरादून-राजनैतिकपत्र) के संपादक रहे। दूनसमाचार (राजनैतिकपत्र-देहरादून) के संचालक रहे। श्री चन्द्रमणि विद्यालङ्कार अब चला रहे हैं। अपने जीवनमें हमने कहाँ कहाँ किस किस पत्रके लिए लेख लिखे, हमको स्वयं पता नहीं। सैकड़ों ही होंगे।

१९२० — राजनैतिक संमेलन (देहरादून) स्वागताध्यक्ष रहे।

१९२५ - पंद्रहवाँ भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (देहरादून) — स्वागताध्यक्ष रहे।

१९२६ - आर्य प्रतिनिधि सभा महोत्सव (उत्तरप्रदेश) स्वागताध्यक्ष रहे।

१९२६ से १९५० देहरादून गढ़वाल आदि जिलोंमें कई राजनैतिक सम्मेलनोंके सभापति रहे।

१९४८ मेरठ जानपदीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन सभापति रहे।

१९५० शामली मेरठ डिविजनमें ब्राह्मण समाज सुधार सम्मेलनमें (इसमें ४० सहस्र जनता एकत्रित थी) सभापति रहे।

महाविद्यालयके उत्सवोंपर और—

आर्य समाजोंके महोत्सवोंपर—

सैकड़ोंवार आर्यसम्मेलनों, वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं, विद्वत्परिषदोंके सभापतिपद पर रहे सो पृथक् ही है, भारतवर्षीय संस्कृत साहित्य सम्मेलनकी प्रगतिके लिए भी हम यथाशक्ति प्रयत्नशील रहे।

यात्रामें

समस्त भारतवर्षकी यात्रा हो चुकी है। जब जब जिस जिस प्रदेशमें कांग्रेसका महाधिवेशन होता रहा है, हम जाते रहे हैं। इस प्रकार पेशावरसे लंकातक, द्वारकासे चीरापूंजी (आसाम) तक यात्रा हो चुकी है। एकबार गढ़वालमें ग्यारह सौ मील यात्रा कांग्रेस कार्य निमित्तसे हुई। दो बार वैसे गये। श्री बदरीनाथ धाम, श्री बदरीनारायण धाम, गंगोत्तरी आदि भी गये। काश्मीर भी देख आये। खेद है ब्रह्मदेशकी यात्रा रह गई। साथी मित्रके कलकत्तेमें हानि हो जानेसे रह गये।

एक बार जापानकी तयारी हो गई थी, खर्चका प्रबन्ध हो चुका था पर सरकारने पासपोर्ट नहीं दिया। एक बार काबुलका पासपोर्ट मांगा गया सरकारने पासपोर्ट नहीं दिया। एण्ट्रन्स पास करनेके पश्चात् पूर्व अफरीकामें १२०) की नौकरी मिल रही थी। पिताजीने जानेसे रोक दिया। हमने नेपाल सरकारके विरुद्ध बहुत लिखा था। इसलिए नेपाल जानेसे भी रह गये। नेपालमें बड़े अत्याचार हो रहे थे। हमारे एक छात्र शुक्रराजशास्त्रीको नेपाल सरकारने फाँसी लगायी थी। हमारे विरोधी लेखोंके कारण नेपाल सरकारका हमपर बहुत दाँत रहा। पर हमारा कुछ बिगाड़ न सके। ब्रिटिश सरकारके गुप्तचरोंके कारण यहाँ हमको कभी कभी तंग किया गया।

जबसे दक्षिणापथ छूटा है तबसे हम कभी दसवर्षमें, कभी, ५-६ वर्षमें, कभी कांग्रेस निमित्तसे, कभी सम्बन्धि-

यों के मिलनेके निमित्तसे ७-८ बार देश गये। अब हमारे बहुतसे इष्ट-मित्र-बन्धु-बान्धव-सम्बन्धी चल बसे हैं। पितृ कुलमें हमारा एक छोटा बन्धु, हमारी छोटी बहिन उसके दो लडके (दोनों वकील हैं, बरंगलमें रहते हैं) शेष हैं। मातृकुलमें हमारे तीन मामाओंमें कोई नहीं रहा, उनके लडकोंमें एकाध कोई शेष है। ताऊ हणमन्तरावके कुलमें उनके पोतोंमें दो एकशेष हैं। हमारी माताकी दो और बहनें थीं, उनका कुल भी निःशेषसा ही है। माताकी बडी बहन ससुरकी सहद्द पर रहती थीं, मझली बहन गुलबर्गेमें रहती थीं। इस तरह सब निःशेषसा ही होता जा रहा है। भर्तृहरिका निम्न श्लोक चरितार्थ हो रहा है—

("वयं येभ्यो जाता" का हिन्दी अनुवाद)

जो जन्मे हम-संग, उतो सब स्वर्ग सिधारे।
जो खेले हम-संग, काल तिनहूँ को मारे॥
हम-हूँ जर-जर देह, निकटहु देखत मरिबो।
जैसे सरिता-तीर-वृक्ष, तुच्छ उचरिबो॥

कहाँ जन्म दक्षिणापथका, कहाँ कार्यक्षेत्र उत्तरापथका! कहाँ जन्म १८६० अक्तूबरका, कहाँ आजका समय १९५० का, मैं क्या क्या लिखूं चाहूँ तो भी लिख ही क्या सकता हूँ। मैं अपने जीवनके कणोंसे यही कहता रहता हूँ—

मेरे जीवनके क्षण बोलो।
स्मृतियोंकी बात पुरानी॥
जीवन की करुण कहानी।
कहते जाओ, चलते—चलते—
मेरे पथके कण कण बोलो॥

उपर्युक्त यह उक्ति किसी 'हेमन्त' कविकी है।

दाँत गये घर आपने। रहा न काला बाल॥
मौत निशानी आगयी। तू अपना आप संभाल॥
(एक महात्मा)

आपा संभाल रहा रहूँ। आपा संभाल रहा हूँ। और क्या करूँ कर भी क्या सकता हूँ। पिछले वर्षही चलता-चलता रह गया।

संस्कृतभाषा प्रचार परीक्षायें

(भारती-भक्तोंकी सेवामें सादर सूचना)

संस्कृतभाषाके प्रति जनताकी बढती हुई रुचिको ध्यानमें रखकर इन परीक्षाओंका प्रारम्भ किया जा रहा है। हमारा विश्वास है कि जिस भारतीय (आबालवृद्ध) ने विदेशी भाषा सीखनेमें अपने जीवनके एक बडे भागके रूपमें अनेक वर्ष व्यय किये होंगे वे ही इस अपनी मूल मातृभाषाको केवल दो वर्षोंमें सीख सकेंगे। प्रत्येक भारतीय माताके स्तनपानके साथ साथही अपनी इस मातृभाषाको बहुत कुछ सीख लेता है। किन्तु विद्यार्थी अवस्थामें उसे अपनी शक्ति एवं बुद्धि विदेशी भाषाके अर्पण कर देनी पडती थी। क्योंकि हम पराधीन थे; अतः हम वैसा करनेके लिये विवश थे। आज हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा उस स्वतन्त्रताके योग्य स्वयंको बनानेके लिये प्रयत्नशील भी हैं। ऐसे शुभ अवसरपर यह शुभकार्य आरम्भ करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है और साथ ही आशा और विश्वास भी।

इन्हीं अपने शुभ संकल्पोंसे प्रेरित होकर इन परीक्षाओंके प्रचारकी योजना हमने बनाई है। वर्षमें दो बार (प्रति ६ मास) ये परीक्षायें हुआ करेंगी। विवरण-पत्रिका तथा पाठ्यक्रम स्वतन्त्ररूपसे छापे गये हैं। उन्हें मंगानेपर पूरा विवरण ज्ञात हो सकेगा।

मंत्री- स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

वैदिक धर्म

(वर्ष ३१ वें)

विषयानुक्रमणिका

(६) जून १९५०

(७) जुलाई १९५०

(८) अगस्त १९५०

(९) सितम्बर १९५०

(१०) अक्टूबर १९५०

(११) नवम्बर १९५०

(१२) डिसेम्बर १९५०

४ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन् त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम । ३८९

५ भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ३९०

६ समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ३९१

७ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९२

(४१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ३९३

---

[४] (३८९) (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम सब इस समय भाग्यवान् हों। (उत प्रपित्वे, उत अह्नां मध्ये) प्रातः काल और दिवसके मध्य समयमें हम भाग्यसे युक्त हों। (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्य के उदयके समय हम भाग्यवान् हों। हे भगवन्! (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब देवोंकी उत्तम बुद्धिमें रहें अर्थात् हमारे विषयमें देवोंकी उत्तम बुद्धि रहे। हमारे विषयमें देवोंकी सद्भावना रहे।

[५] (३९०) हे (देवाः) देवो! (भगः एव भगवान् अस्तु) भग देव ही धनवान् हों। (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उससे हम सब धनवान हों। हे भग! (तं त्वा सर्वः इत् जोहवीति) उस तुमको ही सब जनसमाज बुलाता है। हे भग देव! (सः नः इह पुरएता भव) तुम इस यज्ञमें हमारे नेता बनो।

[६] (३९१) (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषा देवताएं यज्ञके लिये आ जांय। (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान घोडे रथको खींचते हैं उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें।

[७] (३९२) (भद्राः उषसः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो।

उषःकालमें हमारे घोडे और गौवें हमारे घरके पास जमा हों, हमारे बालबच्चे वहां खेलें, दूध दुहा जाय, कलके दूधके दहीसे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाया जाय, इसके सेवनसे सब हृष्टपुष्ट हों और ऐसे आनंदमें हमारे घर उषःकालके प्रकाशसे प्रकाशित होते रहें।

वैदिक आदर्श घर यह है।

[१] (३९३) (ब्रह्माणः अंगिरसः प्र नक्षन्त) अंगिरस ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त हों। (क्रन्दनुः नभन्यस्य प्र वेतु) पर्जन्य स्तोत्रकी इच्छा करे। (धेनवः उदप्रुतः प्र नवंत) नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें। (अद्री अध्वरस्य पेशः युज्यतां)

२ सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ३९४

३ समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ३९५

४ यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ३९६

५ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ३९७

आदरणीय यजमान और पत्नी ये दोनों यज्ञकी सुंदरताको बढावें ।

आंगिरसोंके काव्य सब जगतमें फैलें । मेघोंपर उत्तम स्तोत्र गाये जाय । मेघसे पर्जन्य पडे और नदियां महापूरसे भरपूर होकर बहतीं रहें । पर्जन्यसे अन्न बढे और अन्नसे यज्ञ सफल हो जाय ।

[२] (३९४) हे अग्ने ! (ते सन-वित्तः अध्वा सुगः) तुम्हारा बहुत समयसे प्राप्त मार्ग जानेके लिये सुगम हो । (हरितः रोहितः च) श्याम वर्ण तथा लाल वर्णके घोडे और (ये च सद्मन्) जो यज्ञ गृहमें (वीरवाहाः अरुषः) वीरोंको ले जानेवाले तेजस्वी घोडे हैं (युक्ष्व) उनको तुम रथमें जोतो और इधर आओ । (सत्तः देवानां जनिमानि हुवे) मैं यज्ञमें बैठकर देवोंके जन्मोंके वृत्तान्तोंको स्तोत्ररूपमें गाता हूं ।

वीर घोडोंके शीघ्रगामी रथमें बैठे । मनुष्य वीरोंके काव्योंका गान करें और उनसे स्फूर्ति प्राप्त करें ।

(३] (३९५) वे वः यज्ञं नमोभिः सं महयन्) आपके यज्ञकी महिमाको नमस्कारोंसे बढाते हैं । (मन्द्रः उपाके होता प्र रिरिचे) प्रशंसनीय यज्ञ स्थानके समीप भागमें स्थित होता सर्वोत्तम समझा जाता है । तू (देवान् सु यजस्व) देवोंका उत्तम यजन कर । हे (पुरु-अनीक) बहु तेजस्वी अग्ने ! तुम (यज्ञियां अरमतिं आ ववृत्याः) पूजा योग्य यज्ञ भूमिपर फैल जाओ । प्रदीप्त हो ।

यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त हो । उसमे देवोंके निमित्त उत्तम याजक यज्ञ करे । और स्तोत्रों और नमस्कारोंसे यज्ञका महत्त्व बढाया जाय ।

[४] (३९६) (अतिथिः अग्निः यदा वीरस्य रेवतः) सबके आदरणीय अतिथिरूप अग्नि जिस समय वीर और धनीके (दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्) घरमें सुखसे प्रदीप्त रूपमें देखा जाता है । जिस समय वह (दमे सुधितः सुप्रीतः आ) यज्ञस्थानमें उत्तम रीतिसे स्थापित होकर प्रदीप्त होता है, तब (सः) वह अग्नि (इयत्यै विशे वार्यं दाति) समीपवर्तिनी प्रजाजनोंको श्रेष्ठ धन देता है ।

यज्ञमें प्रदीप्त अग्नि यजमानको धन देता है । यज्ञसे धन प्राप्त होता है जिससे यज्ञ किया जाता है ।

[५] (३९७) हे अग्ने ! (नः इमं अध्वरं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन करो । (मरुत्सु इन्द्रे नः यशसं कृधि) मरुत् वीरोंमें तथा इन्द्रमें हमें यशस्वी करो । (नक्ता उषसा) रात्रीमें तथा उषःकालमें (बर्हिः आ सदतां) आसनों पर बैठो । (उशाना मित्रावरुणा इह यज)तुम्हारे यज्ञ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मित्र तथा वरुणका यहां यजन करो ।

६ एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९८

(४३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन् द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ३९९

२ प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ४००

३ आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ४०१

---

[६] (३९८) (वासिष्ठः रायस्कामः एव) वसिष्ठ धनकी इच्छा करके (सहस्यं अग्निं) बलवान् अग्निकी (विश्वप्सस्य स्तौत्) सब प्रकारके धनकी प्राप्तिके लिये स्तुति करने लगा। (अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्) हमें वह अन्न, धन और बल देवे । ऐसी प्रार्थना उसने की। हे देवो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमे सदा कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ।

हमें अन्न, धन, बल, (सहस्यं) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य और (स्वस्ति) कल्याण चाहिये ।

[१] (३९९) (देवयन्तः विप्राः यज्ञेषु) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी यज्ञोंमें (नमोभिः वः इषध्यै प्र अर्चयन्) अन्नों तथा नमस्कारों द्वारा आपकी प्राप्तिकी इच्छासे स्तोत्र पाठ करते हैं । और (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोकका स्तोत्र गाते हैं । (येषां असमानि ब्रह्माणि) जिनके असीम स्तोत्र (वनिनः शाखा इव) वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह (विष्वक् वियन्ति) चारों ओर फैलते हैं ।

देवत्वकी प्राप्तिका उपाय

देवयन्तः विप्राः — देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी जन देवोंकी स्तुति करते हैं। अर्थात् स्तुतिसे देवत्वके गुण स्तुती करनेवालोंमें आते हैं। इस तरह स्तोता लोग मनुष्योंके देव बनते हैं।

ब्रह्माणि — देवताकी स्तुतिरूप स्तोत्रोंको भी ' ब्रह्म ' कहते हैं। इसका कारण यह है, कि देवताओंमें ब्रह्मभाव है, ब्रह्मके ही रूप या अंश देवगण हैं। इसलिये उनके स्तोत्रसे देवत्व प्राप्ति – अर्थात् ब्रह्मरूपता – होती है।

नरका नारायण होना यही है। इसका साधन भी यही है। ' ब्रह्म ' - का अर्थ - पर ब्रह्म, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, स्तोत्र, स्तुति, कर्म आदि है।

[२] (४००) (यज्ञः प्र एतु) हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचे। (हेत्वः न सप्तिः) जैसे शीघ्रगामी घोडा दौडता है। (समनसः घृताचीः उत् यच्छध्वं) एक विचारसे घृतसे भरी स्रुचाको ऊपर उठाओ। (अध्वराय साधु बर्हिः स्तृणीत) यज्ञके लिये उत्तम आसन बिछाओ। (देवयूनि शोचींषि ऊर्ध्वा अस्थुः) देवोंकी ओर जानेवाली अग्निकी ज्वालाएं ऊर्ध्वगामी होकर फैलें।

यज्ञशालामें देवताओंके लिये आसन बिछाओ। घीसे चमस भर कर आहुति दो। अग्निकी ज्वालाएं प्रदीप्त होकर ऊपर उठें। यह यज्ञ देवोंको प्राप्त हो।

[३] (४०१) (विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) जैसे भरण पोषण करनेयोग्य छोटे बालक माताकी गोदमें बैठते हैं, उस तरह (देवासः बर्हिषः सानौ आ सदन्तु) देव आसनोंके ऊपर बैठें। हे अग्ने ! (विदथ्या विश्वाची आ अनक्तु) यज्ञमें चारों ओर घी सींचनेवाली जुहू तुम्हारे ऊपर सिंचन

४	ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।	
	ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ	४०२
५	एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।	
	राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	४०३

(४४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । दधिक्राः, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्य-द्यावापृथिव्यापः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

१	दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।	
	इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः	४०४
२	दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।	
	इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तो ऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम	४०५

करे। (देवताता नः मृधः मा कः) युद्धके समय हमारे हिंसक शत्रुओंकी सहायता न करना ।

देवताता नः मृधः मा कः — यज्ञमें तथा युद्धमें हमारे घातपात करनेवाले शत्रुओंकी सहायता न करो। कभी कोई ऐसा कार्य न करना कि जिससे शत्रुका बल बढे ।

[४] (४०२) (यजत्राः ते) यजनीय वे देव (घृतस्य सुदुघाः धाराः दुहानाः) जलकी दुहने योग्य जल धाराओंको बरसाते हुए (जोषं आ सीषपंत) हमारी सेवाका स्वीकार करें। (अद्य वसूनां ज्येष्ठं वः महः) आज धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्त्व-पूर्ण धन है वह हमारे पास (आ गंतन) आवे तथा आप भी (समनसः यति स्थ) एक मत करके यहां यज्ञमें आओ।

वसूनां ज्येष्ठं महः आ गन्तन — धनोंमें जो श्रेष्ठ तथा महत्त्वपूर्ण धन होगा वही हमें प्राप्त हो। निकृष्ट धन हमारे पास ही न आवे।

समनसः यति स्थ — एक विचारसे यत्न करते रहो। संघटन करो और उन्नतिका यत्न करो।

[५] (४०३) हे अग्ने ! (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनोंमें हमें धनका प्रदान करो ! हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वया आस्क्राः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (राया युजा) धनसे युक्त होकर (सधमादः) संगठित रहकर आनंदित होते हुए (अरिष्टाः) विनष्ट न हों। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो।

राया युजा — मनुष्य धनको प्राप्त करें।

सधमादः — सब एक स्थानमें साथ रहकर आनन्द करें। संगठित होकर प्रसन्नता प्राप्त करें।

अरिष्टाः — विनष्ट न हों।

सहसावन् -- बलसे युक्त हों। बल प्राप्त करें। उपास्य देव जैसा बलवान् है वैसे बलवान बनें। 'सहः' का अर्थ शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य।

[१] (४०४) (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिक्रा नामक घोडेकी प्रशंसा करता हूं। इसके पश्चात् अश्विदेव, उषा (समिद्धं अग्निं) प्रदीप्त अग्नि और भगकी प्रार्थना करता हूं। तथा इन्द्र, विष्णु, पूषा, (ब्रह्मणः पतिः) ब्रह्मणस्पति, आदित्य, द्यावा पृथिवी, (अपः) जल तथा (स्वः) सूर्यकी प्रार्थना करता हूं।

[२] (४०५) (दधिक्रां उ नमसा बोधयन्तः) दधिक्रा देव को नमस्कारों द्वारा संबोधित करके (उदीराणाः यज्ञं उपप्रयन्तः) तथा प्रेरित करके

३ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ४०६

४ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाऽग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणाऽऽदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ४०७

५ आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ४०८

(४५) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता । त्रिष्टुप् ।

१ आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ४०९

यज्ञके समीप जाते हैं । (बर्हिषि इळां देवीं साद्-यन्तः) यज्ञमें इळा देवीको स्थापन करके (सुहवा विप्रा अश्विना हुवेम) उत्तम प्रार्थना करने योग्य विशेष ज्ञानी दोनों अश्विदेवोंको बुलाते हैं ।

[३] (४०६) (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करता हुआ मैं (अग्निं उप ब्रुवे) अग्निकी स्तुति करता हूं । तथा उषा सूर्य और भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं । (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमंडी शत्रुओंके विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे वर्णके घोडेका स्तवन करता हूं । (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यावयन्तु) ये सब हमसे सब पापोंको दूर करें ।

[४] (४०७) (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबमें मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही होता है । और यह उषा सूर्य आदित्य वसु और अंगिराओंके साथ (सं विदानः) सहमत रहता है ।

उत्तम शिक्षित घोडा वेगवान् तथा चपल और शीघ्रतासे दौडनेवाला होता है । यह स्वयं कहां कैसा खडा रहना चाहिये यह जानता है और रथको जोडनेके समय रथके अग्रभागमें जहां खडा रहना चाहिये वहां स्वयं आकर खडा होता है ।

[५] (४०८) (दधिक्राः ऋतस्य पन्थां अनु-एतवै) दधिक्रा अश्व यज्ञके मार्गसे जानेके लिये (नः पथ्यां आ अनक्तु) हमारे मार्गको जलसे सिंचित करे । (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप यह अग्नि (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाका श्रवण करे तथा (विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु) सब बलवान् ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनें ।

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्गसे जांय । दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें । देवताओंके गुण गाकर स्वयं देवता जैसे बनें ।

सविता

[१] (४०९) (सुरत्नः अन्तरिक्षप्राः) उत्तम रत्नोंको धारण करनेवाला, अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भर देनेवाला, (अश्वैः वहमानः) घोडों द्वारा जिसका रथ चलता है ऐसा (सविता देवः आ यातु) सविता देव आ जाये । (हस्ते पुरूणि नर्या दधानः) जिसके हाथमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत है और जो (भूम निवेशयन् प्रसुवन् च) प्राणियोंका निवास करता और कर्ममें प्रेरित करता है ।

१ **सविता**—सबको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाला । नेता, राजा, वा राजपुरुष लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करें ।

२ **सुरत्नः**—अपने पास धन भरपूर रखे । जिसका उपभोग लोगोंके हितार्थ वह करता रहे ।

२ उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ ३ नष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ४१०

३ स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ४११

३ **अन्तरिक्षप्राः**—(अन्तरि-क्ष-प्राः) अन्दरके निवास स्थानको अपने प्रकाशसे भरपूर भर देवे। जैसा सूर्य अपने प्रकाशसे सब विश्वको भर देता है वैसा राजा अपने राष्ट्रको प्रकाशमान करे। किसीको अन्धेरेमें रहने न दे। सबको ज्ञानका प्रकाश मिले ऐसा प्रबंध करे।

४ **नर्या पुरूणि हस्ते दधानः**—मानवोंका हित करनेके लिये ही जो अपने हाथमें बहुतसे धन ले रखता है। धन भी ऐसे हो कि जो लोगोंका सच्चा हित करनेवाले हों। वे किसी स्थानपर बंद न रखे जाय, पर जनहित (नर्य) के लिये सदा प्राप्त होनेवाले हों। देर न लगते हुए जनहितके लिये वे लगाये जा सके ऐसे धन हों।

५ **भूम निवेशयन् प्रसुवन्**— यह नेता राजा मनुष्यादि प्राणियोंका उत्तम निवास करे, उनको (निवेशयन्) रहनेके लिये सुयोग्य स्थान प्राप्त हो, किसीके रहने सहनेका सुयोग्य प्रबंध नहीं हुआ है ऐसा न हो। (प्रसुवन्) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करे। ऐश्वर्य प्राप्ति सबको हो ऐसे शुभ कर्म वे करे ऐसा प्रबंध हो।

सूर्य आदर्श है मानवोंके लिये। राजा, राजपुरुष, वीर, नेता आदिका आदर्श सूर्य है।

[२] (४१०) (शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया अस्य बाहू) प्रसारित बडे सुवर्णसे परिपूर्ण इस सविताके बाहू हैं (दिवः अन्तान् उत् अनष्टां) द्युलोकके अन्ततक वह व्यापता है। (नूनं अस्य सः महिमा पनिष्ट) निःसंदेह इसका वह महिमा गाया जाता है। (सूरः चित् अस्मै अपस्यां अनु दात्) यह सूर्य ही इस मनुष्यके लिये शुभ कर्मकी प्रेरणा अनुकूलतासे देवे।

१ **हिरण्यया बृहन्ता शिथिरा बाहू**—सुवर्णसे भरे बडे विशाल और फैले बाहू। जिन हाथोंमें दान देनेके लिये पर्याप्त सुवर्ण लिया है ऐसे वीरके हाथ हों तथा ये हाथ दान देनेके उद्देश्यसे फैलायें हों। यहां का ' हिरण्य ' शब्द सुवर्णकी मुद्रा, जेवर अथवा क्रय विक्रयका साधनरूप धन ऐसा अर्थ बता रहा है। क्योंकि ' हिरण्य ' उसको कहते हैं कि जो एक हाथसे दूसरे हाथमें हर लिया जाता है। ' **ह्रियते जनाज्जनमिति** ' (निरुक्त० २।३।१०) व्यवहार करनेके समय जो एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्य तक जाता है, उसका नाम ' हिरण्य ' है। यह व्यवहारकी सुवर्ण मुद्रा है। अर्थात् ' हिरण्य ' का अर्थ केवल सुवर्ण नहीं, परंतु सुवर्ण मुद्रा, राजचिन्हांकित सुवर्ण मुद्रा। ऐसी सुवर्ण मुद्राएं हाथमें लेकर उनका दान करनेके लिये अपना हाथ यह देव फैला रहा है।

२ **सूरः चित् अपस्यां अनुदात्**—सूर्यके समान कर्म की प्रेरणा करता है। सूर्य सबको जगाता और कर्म करनेके लिये मानवोंको प्रेरित करता है। दिन होते ही मनुष्य नाना प्रकारके कर्म करने लगते हैं। यहां कर्मके लिये ' अपस् ' अपस्या ' ये पद हैं। (व्याप्नोतीति अपः) जिस कर्मका परिणाम व्यापक होता है। राष्ट्रभरमें विश्वभरमें होता है, सार्वजनिक हितके जो कर्म होते हैं वे ही ' अपस् ' हैं। ऐसे शुभ कर्म करनेकी इच्छाका नाम ' अपस्या ' है। सूर्यके अस्त होते ही चोर, जार, डाकू, लुटेरे अपने कुकर्म करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं। और सूर्यका उदय होते ही, संध्या, प्रार्थना, यज्ञ, याग, ईश्वर उपासना, ज्ञान यज्ञ आदि प्रशस्त कर्म शुरु होते हैं। चोरी जारी आदि कर्म ' अपस् ' नहीं कहे जाते, परंतु ' यज्ञ याग ही अपस् ' शब्दसे बोधित होते हैं। सूर्यका जैसा ऐसे हितकारी कर्मोंसे संबंध है वैसा ही राजा, नेता, वीर पुरुषका संबंध शुभ कर्मसे ही रहे।

[३] (४११) (सहावा वसुपतिः सः सविता देवः) शक्तिमान और धनवान सविता देव (वसूनि नः आ साविषत्) हमें धन देवे। वह सविता देव (उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः) विस्तृत तेजको धारण करके (अध नः मर्तभोजनं रासते) हमें मानवोंके लिये योग्य भोग्य धन दें।

४ **इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।**
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१२

(४६) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । रुद्रः । जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

१ **इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।**
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ४१३

---

१ सहावा वसुपतिः वसूनि नः आ साविषत्— सामर्थ्यवान् और धनवान् जो होगा वही हमें धन देगा। वही किसीको धन दे सकता है जिसके पास धन होता है। अतः प्रथम धन प्राप्त करो और पश्चात् उसका दान करो। '**सहा-वा**' = शत्रुको पराजित करनेकी सामर्थ्य, शत्रुके कितने भी आक्रमण हुए तो भी उनको सहकर अपने स्थानमें रहनेका सामर्थ्य। यह सामर्थ्य धनवानको प्राप्त करना चाहिये।

२ वसुपतिः सहा-वा— धनका स्वामी ऐसा हो कि जो शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ हो और शत्रुके आक्रमण होनेपर भी वह स्वस्थानमें अचल रह सके। ऐसा वीर ही धनपति होनेका अधिकारी है।

३ वसुपतिः सहावा उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः- धनपति सामर्थ्यवान होकर विस्तृत प्रगति करनेके कार्योंको आश्रय दे। प्रगतिके कार्य करे। '**अमति** (अमतिं गच्छति)= प्रगतिके कार्यको अमति कहते है। जो उन्नतिकी ओर ले जाते हैं, जो परिस्थितिका सुधार करते है। धनवान और सामर्थ्यवान् वीर प्रगति करनेवाले हों। संकुचित वृत्तीवाले न हों।

४ सहावा वसुपतिः मर्तभोजनं रासते— सामर्थ्यवान धनपति मनुष्योंके भोगोंके लिये योग्य धन देवे। जिससे मनुष्य गिर जांयगे वैसे धन न दे। जिससे मनुष्य प्रगति करेंगे ऐसे धन देवे।

[४] (४१२) (इमा गिरः) ये वचन, ये स्तोत्र **(सुजिह्वं पूर्णगभस्तिं) उत्तम जिह्वावाले संपूर्ण धन हाथमें लिये हुए (सुपाणिं सवितारं) उत्तम हाथवाले सविता देवके गुणोंका वर्णन करते हैं। वह (चित्रं बृहत् वयः) श्रेष्ठ तथा विशाल धन (अस्मे दधातु) हमें देवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

'**सुजिह्वं**'—उत्तम जिह्वावाला, उत्तम भाषण करनेवाला, '**पूर्ण-गभस्ति**'-पूर्ण फैलाये हस्तवाला, धनका दान करनेके लिये जिसने अपना हाथ फैलाया है। जो दान करनेके लिये सिद्ध है। '**सु-पाणि**'— जो उत्तम हृष्टपुष्ट हाथवाला है। '**सवितारं**'-सत्कर्ममें प्रेरणा करनेवाला।

'**चित्रं**'-प्राप्त करने, इच्छा करनेयोग्य, '**बृहत्**'— बडा विशाल, विस्तीर्ण, '**वयः**'-अन्न, यश, धन। '**स्वस्तिभिः पात**'-कल्याण करनेके साधनोंसे ही हमारी सुरक्षा हो। अन्तमें जिससे हमारा अकल्याण होगा, ऐसे उपायोंसे किसीकी भी सुरक्षा न हो। अन्तमें कल्याण होना चाहिये। सुरक्षाका ध्येय कल्याण है न कि विनाश।

रुद्रः

[१] (४१३) (इमाः गिरः) ये स्तोत्र **(स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे) सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्रगामी बाण शत्रुपर छोडनेवाले (स्वधा-व्ने वेधसे) अपनी धारण शक्तिसे युक्त विधाता (अ-षाळ्हाय) जिसका आक्रमण असह्य है तथा (सहमानाय) शत्रुके आक्रमणको सहनेवाले (तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय) तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र देव के लिये (भरत) भरो, करो, गाओ। वह (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना श्रवण करें।**

यह वीर, महावीरका वर्णन है, रुद्रका नाम महावीर है। '**स्थिर-धन्वा**'-जिसका धनुष्य बलवान है, स्थिर रहता है। टूटनेवाला नहीं है। '**क्षिप्र-इषुः**'- अपने धनुष्यपरसे अतिशीघ्रतासे यह शत्रुपर बाणोंको छोडता है '**तिग्म-आयुधः**'— तीक्ष्ण आयुधवाला, बाण, त्रिशूल, भाला, खड्ग, आदि जो जो शस्त्रास्त्र इसके पास है, वे सब अतितीक्ष्ण है। '**स्वधा-वान्**'-(स्व) अपनी (धा) धारक शक्तिसे (वान्) युक्त, अपनी निज शक्तिसे संपन्न, (स्वधा) अन्न

२ स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चराऽनमीवो रुद्र जासु नो भव ४१४

३ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ४१५

अपने पास रखनेवाला, पर्याप्त अन्नसे युक्त, '**वेधाः**'— विधाता, कुशलतासे कर्म करनेवाला, निर्माण करनेवाला, कुशल। '**अ-षाळ्हः**'-जिसके आक्रमणको शत्रु सहन नहीं कर सकता, जिसके आक्रमणसे शत्रु स्थानभ्रष्ट होता है, पूर्ण तथा पराभूत होता है, '**सहमानः**'-शत्रुने इसपर आक्रमण किया तो यह अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है, और अपने स्थानपर रहकर ही शत्रुसे लडता रहता है, अपना स्थान छोडता नहीं, इस कारण (रुद्रः) जो शत्रुको रुलाता है, जिसको शत्रु डरते हैं। (देवः) प्रकाशमान, तेजस्वी, व्यवहार चलानेवाला, प्रसन्नचित्त, विजयी जो है वह महावीर है। ऐसे वीरका यह काव्य है।

मनुष्योंमें ऐसे वीर हों।

[२] (४१४) **(सः हि क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण चेतति) वह रुद्र पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास हेतुरूपी धनसे जाना जाता है। और (दिव्यस्य साम्राज्येन) दिव्य जीवनवाले मनुष्यके साम्राज्य ऐश्वर्यसे जाना जाता है। हे रुद्र ! (नः अवंतीः अवन्) तुम हमारी अपनी सुरक्षा करनेवाली प्रजाका संरक्षण करके (नः दुरः उप चर) हमारे घरोंके पास आओ और (नः जासु अनमीवः भव) हमारे प्रजाजनोंमें नीरोगिता करनेवाला हो।**

मानवधर्म - पृथिवीपरके मानवोंका निवास सुखदायक होनेका प्रबंध किया जावे। दिव्य जीवनके साम्राज्यको बढाया जावे। प्रजाका संरक्षण हो। द्वारोंपर पहारा रखा जाय। प्रजाजनोंमें नीरोगिताकी स्थापना हो। राष्ट्रमें रोग ही न हों ऐसा आरोग्यका सुप्रबंध हो।

१ **क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण सः चेतति**—पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास करनेके कारण उसका ज्ञान होता है। जिसने मनुष्योंका निवास सुखदायी किया है वह वीर यह है। वीर मनुष्योंका निवास सुखदायी करे।

२ **दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन सः चेतति**— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यके ऐश्वर्यसे उसके सामर्थ्यका ज्ञान होता है। एक दिव्य जीवनवाले मनुष्योंका साम्राज्य होता है, और दूसरा आसुरी जीवनवाले लोगोंका साम्राज्य होता है। रुद्र दिव्य जीवनवाले भद्र पुरुषोंके साम्राज्यका सहाय्यक है और आसुरी साम्राज्यका विघातक है।

३ **सः अवन्तीः अवन्**—जो प्रजा अपना रक्षण करनेका प्रयत्न करती है उस प्रजाकी सहायता यह महावीर करता है।

४ **दुरः उपचर**—द्वारोंपर संचार कर, द्वारोंका संरक्षण कर। संरक्षक द्वारोंपर पहारा करते हैं।

५ **जासु अनमीवः भव**- प्रजाजनोंमें नीरोगिता उत्पन्न करनेवाला हो। महावीर अपने सुप्रबंध द्वारा राष्ट्रमें रोग न हों ऐसा प्रबंध करे।

वीरोंको अपने राष्ट्रमें किस तरहका प्रबंध करना चाहिये इसका वर्णन इस मन्त्रमें है।

राष्ट्रकी शासन व्यवस्थासे राष्ट्रका शासन प्रबंध कैसा होना चाहिये वह इस मन्त्रमें कहा है।

[३] (४१५) (ते या दिद्युत् दिवस्परि अवसृष्टा) तुम्हारी जो विद्युत् आकाशसे छोडी हुई (क्ष्मया चरति) पृथिवीके साथ विचरण करती है (सा नः परि वृणक्तु) वह हमें छोड देवे, हम पर न गिरे। हे (स्वपिवात) उत्तम वायुके समान बलवान् वीर! (ते सहस्रं भेषजा) तुम्हारे पास सहस्रों औषधियां हैं। (नः तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः) हमारे बालबच्चों में क्षीणता न करो।

४ मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१६

(४७) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ आपो यं वः प्रथमं देवयन्तम् इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ४१७

२ तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ४१८

३ शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ४१९

१ दिवस्परि अवसृष्टा विद्युत् क्षमया चरति- द्युलोकसे चली हुई विद्युत् पृथिवीके साथ मिलती है। बिजली मेघोंसे चली पृथिवीमें जाती है, यह विज्ञानका तत्व यहां कहा है।

२ सहस्रं भिषजा—हजारों औषध है जो रोगोंको दूर करते हैं।

३ तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः—बाल-बच्चोंमें क्षीणता न हो। बाल-बच्चोंका नाश न हो। बाल-बच्चे हृष्टपुष्ट हों।

[४] (४१६) हे रुद्र! (नः मा वधीः) हमारा वध न कर। (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर। (ते हीळितस्य प्रसितौ मा भूम) तुम्हारे क्रोधित होनेपर जो तुम बंधन करते हो वह हम पर न आवे। (जीवशंसे बर्हिषि) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञमें (नः आ भज) हमें रख। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणों द्वारा सुरक्षित रखो।

आपः।

[१] (४१७) (देवयन्तः आपः) हे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जलो! (वः इन्द्रपानं) आपने इन्द्रके लिये पीने योग्य रसमें (इळः ऊर्मिं यं प्रथमं अकृण्वत) भूमिसे उत्पन्न प्रवाह रूप उदक मिलाकर जो पहिले सोमपान तैयार किया था, (वः) आपके (तं शुचिं अरिप्रं) उस शुद्ध पापरहित (घृत-प्रुषं मधुमन्तं) वृष्टिजलसे मिश्रित मधुर रससे युक्त सोमरसको (वयं अद्य वनेम) हम सब आज प्राप्त करें, उसका हम आज सेवन करें।

सोमरसमें शुद्ध जल, मधु (शहद) मिलाकर पीने योग्य बनाया जाता है। जल उसमें न मिलाया जाय तो वह पीने योग्य नहीं होता। इसलिये जलका महत्त्व है।

[२] (४१८) हे (आपः) जलो! (वः मधुमत्तमं तं ऊर्मिं) आपका वह अत्यंत मीठा प्रवाह सोमरसमें मिला है उसको (आशु-हेमा अपां-न-पात्) शीघ्र गतिवाला जलोंको न गिरानेवाला अग्निदेव सुरक्षित करे। (यस्मिन् इन्द्रः वसुभिः मादयाते) जिस पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित होते हैं (तं वः अद्य) उस आपके द्वारा सिद्ध हुए सोमपानको आज (देवयन्तः अश्याम) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम प्राप्त करेंगे, उसका पान करेंगे।

[३] (४१९) (शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः) सैकडों प्रकारोंसे पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवोंके यज्ञस्थानको प्राप्त होते हैं। (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते हैं। प्रत्युत सहायक होते हैं। इसलिये आप (सिन्धुभ्यः घृतवत् हव्यं जुहोत) नदियोंके लिये घृत मिश्रित हव्यका हवन करो।

४ याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४२०

(४८) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप् ।

१ ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ४२१

२ ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ४२२

जलसे (**शत पवित्राः**) सेकडों रीतिसे पवित्रता होती है, मल दूर होते हैं । (स्वधया मदन्ती) जल अन्नसे युक्त होकर आनंद देता है ।

[४] (४२०) (सूर्यः याः रश्मिभिः आततान) सूर्य जिनको अपने किरणोंसे फैलाता है । (याभ्यः इन्द्रः ऊर्मिं गातुं अरदत्) जिन जलोंके लिये इन्द्रने प्रवाहित होनेका मार्ग खोदकर कर दिया है । हे (सिन्धवः) नदियोंके जल प्रवाहो ! (ते वरिवः नः धातन) वे जलप्रवाह श्रेष्ठ अन्न, धन आदि हमें दें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पातं) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित रखिये ।

ऋभवः ।

[१] (४२१) **हे (ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः) कर्ममें कुशल पुरुषोंके निवासक, अन्नवान्, धनवान् नेताओ ! (अस्मे सुतस्य मादयध्वं) हमने बनाये इस सोमरससे आनन्दित हो जाओ । (यातां वः क्रतवः विभ्वः) जानेके लिये उत्सुक हुए तुम्हारे कर्मकर्ता समर्थ अश्व (अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु) हमारे समीप तुम्हारे मनुष्योंका हित करनेवाले रथको ले आवें । तुमको हमारे पास ले आवें ।**

' **नरः** ' —नेता लोग कैसे हों ? उत्तरमें कहते हैं कि वे नेता लोग (**ऋभुक्षण**) कारीगरोंको बसानेवाले हों, (**वाजाः**) बलवान हों, अन्नोंको अपने पास रखनेवाले हों, (**मघवानः**) धनवान हों, ऐसे पुरुष नेतृत्व करें । (**क्रतवः विभ्वः**) कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाले हों, वैभवसंपन्न हों । उनका (नर्यं रथं) रथ मनुष्योंका हित करनेवाला हो अर्थात् वे मानवोंका हित करनेवाले हों ।

[२] (४२२) **(वः ऋभुभिः ऋभुः अभि स्याम) आपके कुशल कारीगरोंके साथ रहकर हम कर्ममें कुशल हों । तथा (विभुभिः विभ्वः) तुम वैभव युक्तोंके साथ रहनेसे हम वैभव युक्त होंगे । (शवसा शवांसि) बलसे बल प्राप्त करेंगे । (वाजसातौ अस्मान् वाजः अवतु) युद्धके समय हमें अपना सामर्थ्य संरक्षण करे । (इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम) इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका नाश करेंगे ।**

१ **ऋभुभिः ऋभुः स्याम**—कारीगरोंके साथ रहकर हम कारीगर बनेंगे । कुशल पुरुषोंके साथ रहकर हम कुशल बनें ।

२ **विभुभिः विभ्वः स्याम**—वैभव युक्त पुरुषोंके साथ रहकर हम वैभव युक्त बनें ।

३ **शवसा शवांसि**-समर्थोंके साथ रहकर हम अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्राप्त करेंगे ।

४ **वाजसातौ वाजः अस्मान् अवतु**—युद्धके समय इस तरह प्राप्त किया सामर्थ्य हमारा संरक्षण करे ।

५ **इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम**—वीरके साथ रहकर हम शत्रुका नाश करेंगे ।

कर्मकी कुशलता, धन, बल, युद्ध निपुणता आदि गुण प्राप्त करके हम शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें शत्रुका प्रत्येक युद्ध क्षेत्रमें सामना करके, शत्रुका पराभव करके हम विजयी होंगे । हमारा पराभव होनेकी अवस्था कदापि नहीं होगी ।

३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ४२३

४ नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४२४

(४९) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२५

[३] (४२३) (ते हि पूर्वीः शासा अभिसन्ति) **वे शूर शत्रुकी बहुतसी सेनाको उत्तम शस्त्रसे पराभूत करते हैं। (उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्) युद्धमें सब शत्रुओंको मारते हैं। (विभ्वा ऋभुक्षाः वाजः अर्यः) वैभव युक्त, कारीगरोंके निवासक बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाले वीर (इन्द्रः) इन्द्र और ऋभु ये सब (शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्) शत्रुके बलको विनष्ट करते हैं।**

१ पूर्वीः शासा ते अभिसन्ति- बहुतसी शत्रुसेना होनेपर भी अपने उत्तम शस्त्रसे वह पराभूत हो सकती है। शत्रुसे (शासा) अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण हों। कदापि कम न हों।

२ उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्-अपने पास उत्तम शस्त्र रहे तो ही युद्धमें सब शत्रुओंका पराभव हो सकता है। **' उपर-ताति '**-(उपर, उपल) पत्थरोंसे **(** ताति) मार-पीट जिसमें होती है। शस्त्रोंसे जिसमें काटना होता है उसका नाम युद्ध है।

३ विभ्वाः ऋभुक्षाः वाजः अर्यः—(विभ्वाः) वैभव संपन्न, (ऋभुक्षाः) कारीगरोंको बसानेवाले, (वाजः) शक्तिमान (अर्यः) श्रेष्ठ आर्य वीर ये शत्रुका पराभव करते हैं।

इस एक ही मंत्रमें ' अर्यः ' पद विभिन्न अर्थोंमें आया है। ' अरि '-शत्रु, उसका बहुवचनी आर्ष प्रयोग ' अर्यः ' अनेक शत्रु इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दूसरा ' अर्य '-स्वामी, आर्य, श्रेष्ठ वीर अर्थका अर्य पद है। ये दोनो पद इसी एक मंत्रमें प्रयुक्त हुए हैं।

४ शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्—शत्रुके बलका नाश करते हैं। नृमणं बल, मानवी संघटनासे प्राप्त होनेवाला बल। ' मिथत्या '—हिंसा, नाश।

[४] (४२४) हे (देवासः) देवो! (नू नः वरिवः कर्तन) हमारे लिये धनका प्रदान करो। (विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत) **सब एक विचार-से रहनेवाले तुम वीर हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहो। (वसवः अस्मे इषं सं ददीरन्) वसुदेव हमें अन्नका प्रदान करें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा सुरक्षाके कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो।**

हमे धन मिले, हम उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रहें, हमें उत्तम अन्न मिले। अन्न, धन और संरक्षण चाहिये। जिससे मनुष्योंकी उन्नति हो सकती है।

आपः।

[१] (४२५) (समुद्र ज्येष्ठाः) **जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल (सलिलस्य मध्यात् यन्ति) जलके मध्य स्थानसे चलते हैं जो (पुनानाः अनि-विशमानाः) पवित्र करते हैं और कहीं भी ठहरते नहीं हैं। (वज्री वृषभः इन्द्रः या ररद) वज्रधारी बलवान् इन्द्रने जिनके लिये मार्ग बना दिया था (ता देवीः आप इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मेरी सुरक्षा करें।**

२ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२६

३ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२७

४ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२८

(५०) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः । जगती, ४ अतिजगती शक्वरी वा ।

१ आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४२९

[२] (४२६) (याः आपः दिव्याः) जो जल आकाशसे प्राप्त होते हैं, और (उत वा स्रवन्ति) जो नदियोंमें बहते हैं, जो (खनित्रिमाः) खोद कर कूवेसे प्राप्त होते हैं, (उत वा याः स्वयंजाः) और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। (याः शुचयः पावकाः) जो शुद्धता और पवित्रता करनेवाले हैं, ये सब (समुद्रार्थाः) समुद्रकी ओर जानेवाले हैं (ताः देवीः आपः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें।

जल चार प्रकारके हैं— (१) दिव्याः आपः—वृष्टिसे आकाशसे जो प्राप्त होते हैं, (२) स्रवन्ति—जो झरनोंसे स्रवते हैं। नदियोंमें बहते हैं, (३) खनित्रिमाः — खोदकर कूवेमेंसे प्राप्त होते हैं, (४) स्वयंजाः—स्वयं जो ऊपर आते हैं। ये सब जलप्रवाह किसी न किसी तरह समुद्र तक पहुंचते हैं। ये जल पवित्रता करनेवाले हैं, शुचिता और निर्दोषता करते हैं। इसलिये आरोग्य बढानेवाले हैं।

[३] (४२७) (यासां वरुणः राजा मध्ये याति) जिनका राजा वरुण मध्य लोकमें जाता है और (जनानां सत्य-अनृते अवपश्यन्) लोगोंके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है। (याः आपः मधुश्चुतः) जो जल प्रवाह मधुररस देते हैं (याः शुचयः पावकाः) जो पवित्र और शुद्ध हैं (ताः आपः देवीः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें।

[४] (४२८) (राजा वरुणः यासु) वरुण राजा जिन जलोंमें रहता है, (सोमः यासु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं। (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मुझे सुरक्षित रखें।

मित्रावरुणौ। विषबाधाको दूर करना।

[१] (४२९) हे मित्र और वरुण! (इह मां आरक्षतं) यहां मेरी सुरक्षा करो! (कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्) स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलनेवाला विष हमारे पास न आवे। (अजकावं दुर्दशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टि हीनता हमसे दूर हो। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने। सांप मुझसे दूर रहे।

' कुलाय '—स्थान, शरीर। ' कुलायत् '—स्थानमें रहनेवाला। जहां का वहां रहकर बाधा करनेवाला। ' विश्वयत् '—विशेष फैलनेवाला। ये सब विविध प्रकारके विष

२ यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३०

३ यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३१

४ याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ४३२

है। 'अजकः'—यह एक रोग है। 'अजका'—यह नेत्र रोगका नाम है जो विशेष रक्त वहां इकट्ठा होनेसे होता है। 'दुः दर्शीकः'—यह भी नेत्र रोग है जिसमें दृष्टि कम होती है।

त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्—सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने। यहां शब्दसे सांप पहचानता है यह भाव है। कष्ट देनेवालेका शब्द सुनकर सर्प—नाग पहचानता और उसको काटता है। ऐसा लोगोंमें जो प्रवाद है वही यहां इस मन्त्र-भागमें है।

अग्नि। विष दूरीकरण

[१] (४३०) (वंदनं यत् विजामन्) वंदन नामक विष जो जन्मभर रहता है, (परुषि भुवत्) जो पर्वस्थानमें रहता है, जो (अष्ठीवन्तौ कुल्फौ परि च देहत्) जांघों और गुल्मग्रंथियोंमें फुलाता है। (अग्निः शोचन् इतः तत् अपबाधतां) अग्नि प्रकाशित होकर यहांसे उसे दूर करे। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) पांवके शब्दसे सांप मुझे न पहचाने।

अग्निकी ज्योतिसे जलाना अथवा लोहेकी शलाका अग्निवत् तपाकर दाग देना यह उपाय संधिके रोग तथा ग्रन्थिरोगको हटानेके लिये यहां बताया है।

विश्वेदेवाः। विषनाश।

[३] (४३१) (यत् शल्मलौ भवति) जो शाल्मली वृक्ष पर होता है। (यत् नदीषु) जो नदियोंके जलोंमें होता है, (यत् विषं ओषधिभ्यः परिजायते) जो विष औषधियोंसे उत्पन्न होता है। (विश्वे देवाः तत् इतः नि सुवन्तु) सब देव उस विषको यहांसे दूर करें। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने।

वृक्षों, वनस्पतियों और नदी जलोंमें होनेवाला विष नाना प्रकारके दिव्य पदार्थों अर्थात् जल, अग्नि, वायु, औषधि, सूर्य प्रकाश आदिसे दूर किया जाय।

नदियां। शिपद रोग दूरीकरण

[४] (४३२) (याः प्रवतः) जो नदियां प्रवण देशमें चलती है (याः निवतः उद्वतः) जो निम्न प्रदेशमें और जो उच्च प्रदेशमें चलती हैं, (याः उदन्वतीः अनुदकाः) जो उदकसे भरी रहती है और जिनमें थोडा जल रहता है, (ता पयसा पिन्वमाना) वे नदियां जलसे तृप्ति करती हुई (अस्मभ्यं शिवाः) हमारे लिये कल्याण करनेवाली होकर वे (देवीः अशिपदाः) दिव्य नदियां शिपद रोगको दूर करनेवाली हों। (सर्वा नद्यः अशिमिदाः भवन्तु) सब नदियां कल्याण करनेवाली हों।

'शि-पद'—यह रोग पांवका रोग है जो पांवको बढाता है। 'श्लिपद' भी इसीका नाम होगा।

(५१) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ ४३३

२ आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥ ४३४

३ आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४३५

(५२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ ४३६

२ मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ ४३७

आदित्यः ।

[१] (४३३) (आदित्यानां नूतनेन अवसा) आदित्योंके नवीन संरक्षणसे (शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि) अत्यन्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों । (तुरासः श्रोषमाणाः) त्वरासे कर्म करनेवाले और प्रार्थना सुननेवाले आदित्य (इमं यज्ञं) इस यज्ञको तथा इस याजकको (अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु) निष्पाप और अदीन करें ।

' आदित्याः ' —वर्षके बारह महिने, अर्थात् उन महिनोंका सूर्य प्रकाश । प्रत्येक महिनेके सूर्य प्रकाशका गुण भिन्न भिन्न रहता है । और उसका मानवी शरीरपर परिणाम विभिन्न होता है । ' शर्म ' —सुख, घर, संरक्षण, कवच । ' तुरास '- त्वरा करनेवाले । ' अनागास्त्वे '-निष्पापपन, निर्दोषता । ' अदितित्वे ' -अदीनता, अहीनता, अदरिद्रता, धनवान् होना ।

[२] (४३४) आदित्य, अदिति, मित्र, अर्यमा, वरुण ये (रजिष्ठाः) वेगवान देव (मादयन्तां) हर्षित हों । आनन्दित हों । (भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु) ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों । (अद्य नः अवसे सोमं पिबन्तु) आज हमारे संरक्षण करनेके लिये ये सोमरस पीवें ।

[३] (४३५) (विश्वे आदित्याः) सब ही बारह आदित्य (विश्वे मरुतः) सब ४९ मरुत् देव (विश्वे देवाः च) सब देव (विश्वे ऋभवः) सब ऋभुदेव और इन्द्र, अग्नि तथा अश्विदेव (सुवानाः) इन सबकी स्तुति की है । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमारी सुरक्षा कल्याणके साधनोंसे करो ।

[१] (४३६) हे (आदित्यासः) आदित्यो ! हम (अदितयः स्याम) अदीन हों । हे (वसवः) वसुदेवो ! (देवत्रा पूः) देवोंमें जो संरक्षक शक्ति है वह (मर्त्यत्रा) हम मानवोंकी सुरक्षाके लिये प्राप्त हो । हे मित्र और वरुण ! (सनन्तः सनेम) तुम्हारी सेवा करने पर हम धनको प्राप्त करेंगे । हे द्यावा-पृथिवी ! हम (भवन्तः भवेम) भाग्यवान् हों ।

हम दरिद्री अथवा दीन न हों । हमारा संरक्षण हो, हम धनवान और भाग्यवान हों ।

[२] (४३७) (मित्रः वरुणः तत् शर्म नः मामहन्त) मित्र और वरुण उस हमारे उत्तम सुखको

३ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ४३८

(५३) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

१ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ४३९

२ प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ४४०

३ उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४१

बढावें। (गोपाः तोकाय तनयाय) विश्वरक्षक देव हमारे बाल-बच्चोंके लिये उत्तम सुख दें। (वः अन्यजातं एनः मा भुजेम) आपके आत्मीय बने हम अन्यके किये पापका फल न भोगें। अन्यके पापका फल हमें भोगना न पडे। हे (वसवः) वसुदेवो! (यत् चयध्वे) जिस कारण आप नाश करते हैं (तत् कर्म मा) उस कर्मको हम न करें।

हमारा सुख बढे, बाल-बच्चे आनंद प्रसन्न हों, दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। जिससे विनाश होता है ऐसा कर्म हमसे न हो।

अन्यजातं एनः मा भुजेम—दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। समाजमें ऐसा होता है। एक मनुष्य पाप करता है और देशका देश परतंत्र बनता है। एक कुपथ्य करके बीमारी लाता है जो फैलती और ग्रामोंको उध्वस्त करती है। इसलिये दूसरेके किये पापोंको भोगना न पडे ऐसा यहां कहा है।

[३] (४३८) (तुरण्यवः अंगिरसः) त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस (इयानाः) प्रार्थना करके (सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त) सविता देवसे जिस रमणीय धनको प्राप्त करते रहे, (यजत्रः नः महान् पिता) यजन करनेवाला हमारा महान पिता तथा (विश्वे देवाः) सब देव (समनसः जुषन्त) एक मतसे (तत्) उस धनको हमारे लिये दे दें।

द्यावा पृथिवी

[१] (४३९) (यजत्रे बृहती द्यावा पृथिवी) पूजनीय बडे विशाल द्यावा पृथिवीकी (यज्ञैः नमोभिः) यज्ञों और अन्नोंके द्वारा (सबाधः ईळे) कष्टको दूर करनेके लिये प्रार्थना करता हूं। (ते चित् हि देवपुत्रे मही) वे द्यावा-पृथिवी जिनके पुत्र देव हैं तथा जो विशाल हैं उनको (पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे) प्राचीन ज्ञानी स्तोता आगे रखते थे और स्तुति गाते थे।

[२] (४४०) (नव्यसीभि गीर्भिः) नवीन स्तोत्रोंसे (ऋतस्य सदने) यज्ञके स्थानमें (पूर्वजे पितरा द्यावा पृथिवी) पूर्व जन्ममें पितर द्यावा-पृथिवीको (प्र कृणुध्वं) सुपूजित करो। हे द्यावा-पृथिवी! तुम (दैव्येन जनेन नः आ यातं) दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ। (वां वरूथं महि) आपका धन बहुत है।

[३] (४४१) हे द्यावा पृथिवी! (वां) आपके (सुदासे पुरूणि रत्न-धेयानि सन्ति) पास उत्तम दाताको देनेके लिये अनेक प्रकार के धन हैं। (यत् अ-स्कृधोयु असत्) जो बहुतसा धन होगा वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा पालन करो।

(५४) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। वास्तोष्पतिः। त्रिष्टुप्।

१ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४४२
२ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ४४३
३ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४४

वास्तोष्पति।

[१] (४४१) हे वास्तोष्पते! (अस्मान् प्रति जानीहि) तुम हमें अपने समझो। (नः स्वावेशः अनमीवः भव) हमारे घरको नीरोग करनेवाला हो। (यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व) जो धन हम तुम्हारे पास मागेंगे वह हमें दे दो। (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये कल्याणकारी हो।

वास्तोष्पतिः—वास्तुका पति। घरका स्वामी। घर और उसके चारों ओरका उद्यान मिलकर वास्तु कहलाती है। इसका विस्तार नगर, प्रांत, राष्ट्र तथा विश्वतक माना जा सकता है। इसका पालक, संरक्षक, स्वामी वास्तोष्पति कहलाता है।

१ अस्मान् प्रतिजानीहि—वास्तुपति वास्तुमें रहनेवालोंको अपने आत्मीय समझे। राष्ट्रपति राष्ट्रमें रहनेवालोंको अपने समझे। यह एकात्मता निर्माण करना अत्यावश्यक है।

घर नीरोग हों

१ स्वावेशः अनमीवः भवतु— (सु-आवेशः अन्-अमीवः) अपना रहनेका घर उत्तम हो तथा नीरोग हो। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे अपने रहनेका स्थान उत्तम हो और रोग बीजोंसे सर्वथा मुक्त हो।

३ द्विपदे चतुष्पदे शं- घरके द्विपाद और चतुष्पादोंका कल्याण हो, वे सब रोगरहित हों। हृष्टपुष्ट हों।

४ यत् ईमहे, तत् नः प्रति जुषस्व—जो जिस समय हमें चाहिये वह उस समय प्राप्त हो। कोई वस्तु न मिली इस कारण हमें कष्ट न हो।

[२] (४४३) हे (वास्तोष्पते) गृहके स्वामिन्! (नः प्रतरणः एधि) तुम हमारे तारक हो और (गय-स्फानः) धनके विस्तारकर्ता हो। हे (इन्दो) सोम! (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और घोडोंसे युक्त होकर (अजरासः स्याम) हम जरारहित हों। (ते सख्ये स्याम) तेरी मित्रतामें हम रहें। (पिता पुत्रान् इव) पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है उस तरह (नः जुषस्व) हमारा पालन कर।

आदर्श घर

घर घरवालोंका संरक्षण करनेवाला हो, धनका विस्तार होता रहे, घरके साथ गौवें और घोडे रहें। घरमें रहनेवाले क्षीण, जीर्ण, निर्बल न हों, बलवान् नीरोग और हृष्टपुष्ट हों। पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है वैसा सब घरवालोंका उत्तम पालन हो। घरवाले प्रभुके मित्र हों, ईश्वर भक्त हों।

[३] (४४४) हे (वास्तोष्पते) वास्तुके स्वामिन्! (शग्मया रण्वया) सुखदायक और रमणीय (गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि) प्रगतिशील ऐसी तुम्हारी सभाको हम प्राप्त हों। ऐसा स्थान हमें मिले। हम ऐसे सभास्थानके सदस्य बनें। (क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि) प्राप्त धनको तथा अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें हमारे श्रेष्ठ धनको सुरक्षित रखो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो।

आदर्श घर

१ शग्मया, रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि-

(५५) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः २ ८ प्रस्वापिनी उपनिषद्)।
१ गायत्री, २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५ ८ अनुष्टुप्।

१ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ४४५

२ यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ४४६

३ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ४४७

सुखदायक, रमणीय, प्रगतिसाधक और जहां मिलकर अनेक मनुष्य बैठ सकते हैं ऐसा घर हमारा हो। ' संसद् ' अनेक मनुष्य जहां मिल जुलकर रह सकते हैं, ऐसा घर हो। घर छोटा न हो, जहां संसद (सभा) हो सकती है ऐसा बडा घर हो।

२ क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि—जो धन है उसका संरक्षण करना चाहिये। इसका नाम ' क्षेम ' है। जो धन इस समय प्राप्त नहीं है उसको प्राप्त करनेका नाम ' योग ' है। प्राप्त धनका संरक्षण और अप्राप्त धनकी प्राप्ति इस विषयका उद्योग करना चाहिये। और जो धन हो वह ' वरं ' श्रेष्ठ चाहिये। श्रेष्ठ साधनसे प्राप्त किया श्रेष्ठ धन हो। हीन रीतिसे, हीन मार्गसे धन प्राप्त न किया जावे।

वास्तोष्पति

[१] (४४५) हे वास्तोष्पते ! तुम (अमीव-हा) रोगोंका नाश करो। (विश्वा रूपाणि आविशन्) अनेक रूपोंमें प्रविष्ट होकर (नः सुशेवः सखा एधि) हमारा सुखकर मित्र हो।

घरका स्वामी घरके अन्दरसे तथा घरके बाहरके रोगबीज दूर करे और अपने घरमें आरामसे रहे। उसका स्वभाव सुखदायी मित्र जैसा हो और वह अनेक रूपोंको धारण करे। धर्मपत्नीके साथ पति, पुत्रोंके साथ पिता, भाईयों और बहिनोंके साथ बन्धु, मित्रोंके साथ मित्र, श्वशुरके साथ जामात, नगरमें नागरिक, युद्धके समय महावीर, ज्ञानियोंमें महाज्ञानी, शासनके समयमें शासन करनेमें चतुर, इस तरह एक ही मनुष्य विविध क्षेत्रोंमें विविध रूप धारण करके रहे। परमेश्वर भी सब रूप धारण करके तद्रूप होता है, उसी तरह घरके स्वामीको व्यवहारमें नाना रूप धारण करके बर्तना चाहिये। जिस समय जो रूप लिया जाय उस समय उत्तमसे उत्तम उस रूपका कार्य वह करे। उसमें कोई न्यूनता न रहे।

' विश्वा रूपाणि धारयन् '—यह बडे महत्त्वका उपदेश है। यदि कोई गृहपति अपने किसी रूपमें असमर्थ सिद्ध हो जाय, तो वह उतना निर्बल सिद्ध होगा और उतना उसका राष्ट्र भी निर्बल होगा। इस तरह विचार करके जान सकते हैं कि विविध रूपोंमें एक ही मनुष्य किस तरह कार्य कर सकता है। और इस कार्यकी राष्ट्र रक्षामें आवश्यकता भी होती है।

घरका रक्षक कुत्ता

[२] (४४६) हे (अर्जुन सारमेय पिशंग) श्वेत सरमाके पुत्र पिंगल वर्णवाले कुत्ते ! (यत् दतः यच्छसे) जब तू दांत दिखाता है, तब (ऋष्टयः इव वि भ्राजन्ते) शस्त्रोंके समान वे चमकते हैं। तथा (स्रक्वेषु उप बप्सतः) होठोंमें तेरे दांत खानेके समय भी विशेष चमकते हैं। ऐसा तू अब (सु नि स्वप) अच्छी तरह सोजा।

घरका संरक्षण करनेके लिये अपने घरमें कुत्ता रखना योग्य है। उसको प्रेमसे घरके परिवारके समान रखा जाय। (उप बप्सतः) अपने सामने उसको खिलाया जाय। उसके रहने और सोनेके लिये उत्तम प्रबंध हो। घरमें गायें, घोडे तथा कुत्ता भी हो। यह उत्तम संरक्षक है।

[३] (४४७) हे (पुनःसर सारमेय) जिस स्थानमें एक वार जाते हैं, उसी स्थानमें पुनः पुनः जानेवाले सरमाके पुत्र ! (तस्करं स्तेनं वा राय) तू चोर वा डाकू पर दौड। (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं

४	त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः । स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप	४४८
५	सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः । ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः	४४९
६	य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः । तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा	४५०
७	सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् । तेना सहस्येना वयं नि जनान् त्स्वापयामसि	४५१

रायसि) इन्द्रके भक्तोंपर क्यों दौडता है ? इनको छोड दो । (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा करता है ? (सु नि स्वप) अब तुम अच्छी-तरह सोजा ।

पालित कुत्तेको सिखाना चाहिये। वह चोर और डाकूको ही काटे और सज्जनको न पकडे । इस तरहकी उत्तम शिक्षा उसको देनी चाहिये ।

[४] (४४८) (त्वं सूकरस्य दर्दृहि) तू सूवर का विदारण कर। कदाचित् (सूकरः तव दर्दर्तु) सूवर तुझे भी विदारित करेगा। तुम्हें फाडेगा, सावध रह। प्रभुके भक्तोंपर तू क्यों दौडता है ? हमें क्यों बाधा करता है, अब तुम अच्छी तरह सोजा ।

कुत्तेको सिखाना चाहिये कि सूवर पर आक्रमण कैसा करना चाहिये। सूवरको तो कुत्ता फाडे, पर सूवर कुत्तेको न फाड सके।

सुरक्षित नगर

[५] (४४९) (सस्तु माता, सस्तु पिता) माता पिता सो जांय। (सस्तु श्वा, सस्तु विश्पतिः) कुत्ता सोवे और प्रजा पालक भी सो जावे । (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब बन्धुबांधव सो जांय। (अभितः अयं जनः सस्तु) चारों ओरके ये सब लोग सो जांय ।

नगर पालनकी व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि सब लोग आरामसे सो जांय। रक्षक (विश्पतिः) और (श्वा) कुत्ते भी आरामसे सो जांय। रातभर जागनेकी आवश्यकता न रहे। सुसंरक्षित नगरमें ही सब आरामसे सो सकते हैं। जहां चोर डाकू घातपाती लोगोंके उपद्रवकी संभावना बिलकुल नहीं होती वहां सब लोग और रक्षक तथा कुत्ते भी आरामसे सो सकते हैं।

[६] (४५०) (यः आस्ते, यः च चरति) जो यहां ठहरता है और जो चलता है, (यः जनः नः पश्यति) जो मनुष्य हमें देखता है, (तेषां अक्षाणि सं हन्मः) उनके आंखोंको हम एक केंद्रमें लाते हैं, (यथा इदं हर्म्यं तथा) जैसा यह राज प्रासाद स्थिर है वैसे उनके आंख एक केन्द्रमें स्थिर हों।

' संहन् ' —का अर्थ ' संघ करना ' एक केन्द्रमें लाना, एकाग्र करना, मिलाना । जैसा (हर्म्यं) यह राज प्रासाद एक स्थानपर स्थिर है वैसे सबका लक्ष्य एक ही अपनी सुरक्षाके कार्यमें लगा रहे । जो बैठा है, जो चलता है, जो देखता है, वे अनेक कार्य करते रहनेपर भी अपनी सुरक्षा करनेमें सब एक हों। ऐसे संघटित प्रयत्नसे सबकी सुरक्षा होगी ।

[७] (४५१) (सहस्रशृंगः यः वृषभः) सहस्रों किरणोंवाला जो बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला सूर्य है वह (समुद्रात् उत्-आचरत्) समुद्रसे ऊपर आया है । (तेन सहस्येन) उस शत्रुका पराभव करनेवाले सूर्यके बलसे (वयं जनान् नि स्वापयामसि) हम सब लोगोंको सुला देते हैं।

८ प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामासि ४५२

सूर्य बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला है। वह सहस्रों किरणोंसे उदयको प्राप्त होता है, समुद्रसे ऊपर उठता है। जब वह सूर्य उदयको प्राप्त होकर प्रकाशता है तब सब लोगोंको वह प्रशस्त कर्मकी प्रेरणा करता है और सबको कर्ममें लगाता है। ऐसा यह सूर्य अस्त होनेके पश्चात् सब लोग विश्राम लेते हैं और सोते हैं।

[८](४५१) (याः प्रोष्ठे-शयाः) जो अंगनमें सोती हैं, (याः नारीः वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं, (याः तल्प-शीवरीः) जो स्त्रियां विस्तरों पर सोती हैं (याः पुण्यगन्धा स्त्रियः) जो उत्तम गन्धवाली स्त्रियां हैं, (ताः सर्वाः स्वापयामसि) उन सब स्त्रियोंको हम सुला देते हैं।

राष्ट्रमें स्त्रियां निर्भय हों

(प्रोष्ठे शयाः) स्त्रियां अंगनमें सोती हैं, यह प्रदेश उष्णदेश ही होगा। और सुरक्षित देश होगा जहां अंगनमें सोनेसे उनको किसी तरह धोखा होनेकी संभावना नहीं है। (वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं। रात्रीके समय रास्तेसे वाहन चलते हैं और उनमें स्त्रियां आरामसे सोती हैं। देशकी सुरक्षाका प्रबंध कितना अच्छा होगा, इसकी कल्पना इससे हो सकती है। वाहन मार्गपर है, चल रहा है और उसमें स्त्रिया निर्भय होकर सो रही हैं। धन्य है वह देश कि जिसमें स्त्रियां ऐसी सो सकती हों। (याः तल्प-शीवरीः) घरमें बिस्तरों-पर अपने कमरोंमें जो स्त्रियां सोती हैं। ये स्त्रिया भी निर्भय हैं अतः शान्तिसे सोती हैं।

स्त्रियोंका आरोग्य

(पुण्य-गन्धाः स्त्रियः) जिन स्त्रियोंके शरीरमें तथा मुखमें उत्तम सुगंध आता है। शरीरमें पसीनेकी दुर्गन्धि जिनके शरीरमें नहीं है, परंतु पुण्यगन्ध जिनके शरीरसे आता है। जो स्त्रियां आरोग्य पूर्ण होती हैं उनके शरीरसे ही उत्तम गन्ध आता है, पुण्यगन्ध, सुगन्ध और सुवास यह परिपूर्ण आरोग्यमें ही होनेवाली बात है।

ये सब प्रकारकी स्त्रियां आरामसे निर्भय होकर गाढ निद्राका सुख प्राप्त करें। नगरमें, राष्ट्रमें इन स्त्रियोंपर अत्याचार होनेकी संभावना न होगी, तभी स्त्रिया आरामसे सो सकती हैं। इतनी सुरक्षा राष्ट्रमें तथा राष्ट्रके प्रत्येक नगरमें हो। यह आदर्श राष्ट्र है।

॥ यहां विश्वेदेव प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अनुवाक चौथा [अनुवाक ५४ वाँ]

[३] मरुत्-प्रकरण

(५६) २१ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मरुतः। त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट्।

१	क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः	४५३
२	नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्	४५४
३	अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन्	४५५
४	एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार	४५६
५	सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम्	४५७
६	यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः	४५८

[१] (४५३) (अध रुद्रस्य सनीळा मर्याः) महावीरके एक घरमें रहनेवाले (सु-अश्वाः व्यक्ताः नरः) जिनके पास उत्तम घोडे हैं वे सबको परि-चित नेता वीर (ईं के) भला कौनसे हैं ?

' रुद्र '—शत्रुको रुलानेवाला महावीर, दिग्विजयी वीर। ' मर्याः '—मर्त्य, मरनेके लिये सिद्ध, मरनेतक लडनेवाले, मरणधर्मवाले। ' स—नीळाः, स—नीडाः '—एक घरमें रहनेवाले, जिनका निवास पृथक् पृथक् घरों नहीं होता, परंतु जो सब एक ही घरमें रहते है, रहना, सहना, खान, पान, सोना आदि जिनका एक घरमें रहता है। ' व्यक्ताः '- प्रकट, व्यक्त, परिचित, जिनकी खेल कूद खुले स्थानमें होती है।

[२] (४५४) (एषां जनूंषि न किः वेद) इन वीरोंके जन्मके वृत्तान्तको कोई नहीं जानता। (ते मिथः जनित्रं अंग विद्रे) वे वीर परस्परके जन्मके वृत्तान्तको सचमुच जानते हैं।

[३] (४५५) वे वीर जब (स्व-पूभि मिथः अभिवपत) अपने पवित्र साधनोंके साथ जब पर-स्पर मिलते हैं, तब (वातस्वनसः श्येनाः अस्पृ-ध्रन्) पवनके तुल्य बडा शब्द करनेवाले बाज पक्षियोंकी तरह वेगमें स्पर्धा करते हैं।

[४] (४५६) (धीरः एतानि निण्या चिकेत) बुद्धिमान पुरुष इन वीरोंके ये कार्यकलाप जानता है। (यत्) जिन वीरोंके लिये (मही पृश्निः ऊधः जभार) बडी गौने दुग्धाशयमें दूधका भार उठाया था।

वीर गौका दूध पीयें। वीरोंको दूध पिलानेके लिये गौवें रखीं जाय।

[५] (४५७) (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः सुवीरा) वीर मरुतोंके कारण अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (सनात् सहन्ती) सदा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा (नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु) मनुष्योंके बलोंको बढानेवाली बने।

जिस राष्ट्रकी प्रजामें अच्छे वीर होते हैं वही सदा विजयी होती है और उसका ही बल बढता है। अतः वीरोंका निर्माण करना चाहिये।

[६] (४५८) वे वीर शत्रुपर (यामं येष्ठाः) आक्रमण करनेका यत्न करनेवाले, (शुभाः शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले (श्रिया संमिश्लाः शोभासे संयुक्त हुए तथा (ओजोभिः उग्राः) सामर्थ्यसे उग्र वीर प्रतीत होते हैं।

७	उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान्	४५९
८	शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः	४६०
९	सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः	४६१
१०	प्रिया वो नाम हुवे तुराणामायत् तृपन्मरुतो वावशानाः	४६२
११	स्वायुधासः इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः	४६३
१२	शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।	
	ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः	४६४

वीर राष्ट्रके शत्रुपर आक्रमण करके उनको भगा देवें, स्वयं सुशोभित रहें, तेजस्वी रहें और अपना सामर्थ्य बढाते रहें, कभी अपना सामर्थ्य कम न होने दें।

[७] (४५९) (वः ओजः उग्रं) **आपका सामर्थ्य उग्र है, वीरता युक्त है, (शवांसि स्थिरा) आपके बल स्थिर अर्थात् स्थायी रहनेवाले हैं। (अध) और (मरुद्भिः गणः तुविष्मान्) मरुद्वीरोंके कारण तुम्हारा संघ बलवान् हुआ है।**

वीरोंमें प्रभावी सामर्थ्य और सदा टिकनेवाला बल चाहिये और उनमें संघशक्ति भी उत्तम चाहिये।

[८] (४६०) (वः शुष्मः शुभ्रः) **आपका सामर्थ्य निष्कलंक है, तुम्हारे (मनांसि क्रुध्मी) मन क्रोधसे भरे हैं, तुम शत्रुपर क्रोध करनेवाले हो, परंतु (धृष्णोः शर्धस्य) शत्रुका धर्षण करनेके तुम्हारे सांघिक सामर्थ्यका (धुनिः) वेग (मुनिः इव) मुनिकी तरह मनन पूर्वक कार्य करनेवाला है।**

वीरोंका सामर्थ्य चारित्र्य युक्त निर्दोष होना चाहिये। वे शत्रुपर क्रोध करें, पर उनका शत्रुपर होनेवाला आक्रमण मनन-पूर्वक हो, अविचारसे न हो।

[९] (४६१) **वह तुम्हारा (सनेमि दिद्युं) तीक्ष्ण धारावाला तेजस्वी शस्त्र (अस्मत् युयोत) हमसे दूर रहे, हमपर उसका आघात न हो। (वः दुर्मतिः इह नः मा प्रणक्) आपकी शत्रुनाश करनेकी बुद्धि हमारा नाश न करे।**

वीरोंके शस्त्रसे तथा उनके वीरता युक्त क्रोधसे अपने ही लोगोंका नाश न हो।

[१०] (४६२) हे (मरुतः) मरुद्वीरो! (तुराणां वः) त्वरासे कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम आहुवे) प्यारे नामोंसे मैं तुम्हें बुलाता हूं। (यत् वावशानाः) जिस कार्यकी इच्छा करनेवाले तुम (आतृपत्) तृप्त होते हैं वही हम करें।

वीरोंको लोग अच्छे प्रेमभरे शब्दोंसे बुलावें, उनका आदर करें और उनको अच्छे लगनेवाले ही कार्य करें। अर्थात् जनतामें वीरोंका आदर रहे।

[११] (४६३) **वे वीर (सु आयुधाः) अच्छे शस्त्र अपने पास रखनेवाले (इष्मिणः सुनिष्काः) वेगवान् और सुन्दर आभूषण धारण करनेवाले और (स्वयं तन्वः शुम्भमानाः) वे अपने ही शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं।**

वीरोंके पास उत्तम आयुध हों, वीर वेगसे शत्रुपर आक्रमण करनेवाले हों, वे अपने शरीरोंको सुशोभित करके प्रभावी बनावें।

[१२] (४६४) हे (मरुतः) मरुद्वीरो! (शुचीनां वः हव्या शुची) आप शुद्ध हैं अतः आपके **अन्न भी पवित्र हैं। (शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि) इन शुद्ध वीरोंके लिये मैं हिंसारहित हो यज्ञको करता हूँ। (ऋत-सापः) सत्यकी उपासना करनेवाले ये (शुचि-जन्मानः) शुद्ध कुलमें जन्मे कुलीन वीर (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता करनेवाले (ऋतेन सत्यं आयन्) सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं।**

१३ अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ४६५

१४ प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ४६६

१५ यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा ४६७

१६ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ४६८

वीर शुद्धाचार करनेवाले हों, पवित्र अन्नका सेवन करें। सत्यका सेवन करें, स्वयं शुद्ध पवित्र और निष्पाप बनें। सत्यमय जीवनसे सत्यका व्यवहार करें, कभी तेढे व्यवहारमें न जांय।

[१३] (४६५) **हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अंसेषु खादयः आ) आपके कंधोंपर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्माः) छातीयोंपर सुवर्ण मुद्राओंके हार (उप शिश्रियाणाः) लटक रहे हैं। (विद्युतः न रुचानाः) बिजलियोंकी तरह चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) शत्रुपर आघातोंकी वर्षा करनेवाले अपने आयुधोंसे (स्वधां अनु यच्छमानाः) अपनी धारणा शक्तिको प्रकट करते हो।**

वीरोंके शरीरोंपर आभूषण रहें और वे उनकी शोभाको बढावें। उनके शस्त्र बिजलीकी तरह चमकनेवाले तीक्ष्ण हों, वे उन शस्त्रोंसे शत्रुपर आघातोंकी वृष्टि करें और अपनी शक्तिको प्रभावित रीतिसे दिखावें।

[१४] (४६६) **हे (प्रयज्यवः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (वः बुध्न्या महांसि) तुम्हारे मौलिक अपने सामर्थ्य (प्र ईरते) प्रकट हो रहे हैं। तुम अपने (नामानि प्रतिरध्वं) यशोंके साथ परले तट तक जाओ। शत्रुतक पहुंचो। (एतं सहस्रियं दम्यं) इस सहस्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण हितकारी घरके (गृहमेधिनं भागं जुषध्वं) यज्ञके भागका स्वीकार करो।**

वीरोंके सामर्थ्य बढते रहें, उनके यश भी बढते जांय। उनके घर सहस्रगुणित हित करनेवाले हों और वे यज्ञका भाग यज्ञमें आकर स्वीकारे।

[१५] (४६७) **हे वीर मरुतो ! (वाजिनः विप्रस्य हवीमन्) बलशाली ज्ञानी पुरुषके यज्ञ करनेके समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि इत्था अधीथ) यदि इस तरह तुम जानते हो, तो (सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात) उत्तम वीरतासे युक्त धनका दान तुरन्त ही करो। अन्यथा (अन्यः अरावा) दूसरा कोई कंजूस शत्रु (नु चित् यं आदभत्) उसको दबा देगा, विनष्ट कर देगा।**

वीरता युक्त धनका दान यज्ञ करनेवालोंको कर दो, धन ऐसा हो कि जिसके साथ वीरता रहे। वीरता धनके साथ न रहीं, तो शत्रु उसको दबा देगा, लूट ले जायगा। इसलिये धनके साथ वीरता अवश्य चाहिये।

[१६] (४६८) **हे वीर मरुतो ! (अत्यासः न) घुडदौडके घोडे की तरह (सु अञ्चः यक्ष-दृशः) उत्तम वेगवान् और यज्ञका दर्शन करनेके लिये आये (मर्याः न) मनुष्योंकी तरह जो (शुभयन्त) अपने आपको सुशोभित करते हैं (ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न) वे राज प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी तरह (शुभ्राः) सुहानेवाले (पयोधाः वत्सासः न) दूध पीनेवाले बालकके समान (प्रक्रीळिनः) खेलते रहते हैं।**

१ **यक्ष-दृशः मर्याः शुभयन्त—** यज्ञ देखनेके लिये जानेवाले लोग सुशोभित होकर जाते हैं। यज्ञका दर्शन करनेके

१७	दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।	
	आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम्	४६९
१८	आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।	
	य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः	४७०
१९	इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।	
	इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति	४७१
२०	इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद् यथा वसवो जुषन्त ।	
	अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे	४७२

लिये जाना हो तो न्हा धोकर अच्छे वस्त्र पहनकर जाना चाहिये ।

१ हर्म्ये-ष्ठाः शिशवः शुभ्राः—राजप्रासादमें रहने-वाले बालक गौर वर्ण, स्वच्छ अथवा सुन्दर होते है । गरीबकी झोपडीमें रहनेवाले बालक गरीब होनेके कारण अस्वच्छ रहते होंगे। यहां वीरोंके लिये जो उपमा दी है वह प्रासादमें रहनेवाले बाल-कोंकी दी है ।

[१७] (४६९) शत्रुओंका (दशस्यन्तः) नाश करनेवाले तथा (सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः) सुस्थिर द्यावा पृथिवीको आश्रय देनेवाले (मरुतः नः मृळयन्तु) वीर मरुत् हमें सुखी बना देवें। हे (वसवः) वसानेवाले वीरो ! (गोहा नृहा वः वधः) गौका घातक और मनुष्योंका घातक शस्त्र हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे। तुम (सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं) अपने अनेक सुखके साधनोंके साथ हमारे पास आनेके लिये चल पडो ।

वीर शत्रुका नाश करें और लोगोंको सुखी करें। गौका नाश-कर्ता और मनुष्योंका वध करनेवाला समाजसे दूर किया जावे । और सुखसाधन अपने समीप रखे जांय ।

[१८] (४७०) हे (वृषणः मरुतः) बलवान् वीर मरुतो ! (सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः) यज्ञ-स्थानमें बैठकर तुम्हारे सर्वत्र फैलनेवाले दानकी स्तुति करनेवाला (होता) याजक (वः आ जोह-वीति) तुम्हें बुला रहा है । (यः ईवतः गोपाः अस्ति) जो प्रगतिशील संरक्षक वीर है, (सः अ-द्वयावी) वह अनन्यभावसे युक्त होकर (उक्थैः वः हवते) स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करता है ।

१ वीर (वृषणः) बलवान्, वीर्यवान् पराक्रमी हों ।

२ वे (सत्रा-अर्ची रातिं) ऐसा दान दें कि जिसका परिणाम या लाभ सब लोगोंतक पहुंचे ।

३ ईवतः गोपाः—संरक्षण करनेवाला प्रगतिशीलोंका संरक्षण करे ।

[१९] (४७१) (इमे मरुतः तुरं रमयन्ति) ये वीर मरुत् त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं । (इमे सहः सहसः आनमन्ति) ये वीर अपनी प्रभावी शक्तिके सहारे बलवान् शत्रुको विनम्र करते हैं । (इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति) ये वीर स्तोत्रोंका आदरसे पाठ करनेवालोंका संरक्षण करते हैं और (अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति) शत्रुओंपर बडाभारी द्वेष धारण करते हैं ।

१ तुरं रमयन्ति—त्वरासे कार्य करनेवाले उद्यमशीलको सुख देना चाहिये ।

२ सहः सहसः आनमन्ति—अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको भी विनम्र करना चाहिये ।

३ शंसं वनुष्यतः निपान्ति—प्रशंसनीय कार्य करने-वालोंका संरक्षण होना चाहिये।

४ अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति—शत्रुओंका द्वेष करना उचित है । द्वेष रखना हो तो शत्रुपर ही रखना जाय ।

[२०] (४७२) (इमे वसवः मरुतः) ये वसा-नेवाले वीर मरुत् (यथा रध्रं चित् जुनन्ति) जैसे समृद्धिवाले मनुष्यके पास जाते हैं, वैसे ही

२१ मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद् दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ४७३

२२ सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ४७४

२३ भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा ४७५

२४ अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाऽध स्वमोको अभि वः स्याम ४७६

(भूमिं चित् जुषन्त) भीख मांगनेके लिये भटकनेवालेके पास भी जाते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (तमांसि अप बाधध्वं) अन्धेरेको दूर हटा दो और (अस्मे विश्व तनयं तोकं धत्त) हमारे पास बाल बच्चोंको सब प्रकारसे सुखमें रखो।

वीर जैसा धनिकोंका संरक्षण करें वैसा गरीबोंका भी संरक्षण करे। वीर जहां जांय वहां अज्ञानान्धकार दूर करें और सब बाल बच्चोंको सुरक्षित रखें।

[२१] (४७३) हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः दात्रात् मा निः अराम) आपके दानसे हम दूर न रहें। (विभागे पश्चात् मा दघ्म) धनको बांटनेके समय हम सबसे पीछे न रहें। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (वः सुजातं यत् ईं अस्ति) आपका उच्च कोटीका जो भी धन है उस (स्पार्हे वसव्ये) उस स्पृहणीय धनमें (नः आभजतन) हमें अंशभागी करो।

हमें धन मिले और धनमें हम अंशभागी हों।

[२२] (४७४) हे (रुद्रियासः अर्यः मरुतः) महावीरके श्रेष्ठ वीरो ! (यत् शूराः जनासः) जब शूर लोग (यह्वीषु ओषधीषु विक्षु) नदियोंमें, अरण्यमें, प्रजाओंमें (मन्युभिः संहनन्त) उत्साहके साथ मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, (अध पृतनासु) तब ऐसे युद्धोंमें (नः त्रातारः भूत-स्म) हमारे संरक्षक बनो।

[२३] (४७५) हे वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र) पितरोंके संबंधमें बहुतसे स्तोत्र श्रवण कर चुके हो, (वः या पुरा चित् शस्यन्ते) तुम्हारे इन स्तोत्रोंकी पहिलेसे प्रशंसा होती आयी है। (उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा) उग्र शूर वीर मरुतोंकी सहायतासे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है, (मरुद्भिः अर्वा वाजं सनिता) मरुतोंकी सहायतासे घोडा भी बलके कार्य करता है।

[२४] (४७६) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यः असु-रः जनानां विधर्ता) जो अपना जीवन देकर लोगोंका विशेष रीतिसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु) हमारा वीर बलवान् बने। (येन सुक्षितये अपः तरेम) जिसकी सहायतासे हम उत्तम सुखपूर्वक निवास करनेके लिये दुःखके समुद्रको भी हम तैरकर पार हो जायेंगे। और (वः स्वं ओकः अभिस्याम) तुम्हारे मित्र बनकर हम अपने स्वकीय घरमें आनन्दसे प्रसन्न रहेंगे।

१ असु-रः जनानां विधर्ता जो अपना जीवन देकर सब लोगोंका संरक्षण करता है वह महावीर है।

२ वीरः शुष्मी अस्तु-- वह वीर बलवान हो। जो बलवान होगा वही सब लोगोंका संरक्षण करेगा।

३ सुक्षितये अपः तरेम-- हमारा सुखपूर्ण निवास करनेके लिये हम दुःखके महासागरको भी तैरकर पार हो जायंगे। प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करके हम सुख प्राप्त करेंगे।

४ स्वं ओकः अभि स्याम-- अपने घरमें हम आनंद प्रसन्न होकर रहें।